पंचम अध्याय : 'तोड़ो कारा तोड़ो' - शिल्प विधान

i. जीवनीपरक उपन्यास की शैली

साहित्य एक समावेशी विधा है। अतः साहित्यिक लेखन में बहुत सारी विधाओं को अपनाया जाता है। उपन्यास भी साहित्य की एक विधा है। उपन्यास में जीवन को समग्रता में देखा जाता है।

जीवनीपरक उपन्यास किसी भी भाषा के साहित्य की एक ऐसी विधा है जो किसी व्यक्ति के वास्तविक जीवन को आधार बनाकर लिखा जाता है। जीवनीपरक उपन्यास ऐसे उपन्यास होते हैं जिसमें किसी व्यक्ति के जीवन में जो भी घटनाएँ घटी हैं उसमें न तो कुछ जोड़ा जा सकता है और न ही उसमें से कुछ घटाया जा सकता है। लेखक नरेंद्र कोहली कहते हैं कि "एक जीवनी और एक उपन्यास में क्या अंतर होता है। जीवनी में एक घटना के बाद दूसरी घटना, दूसरी घटना के बाद तीसरी घटना क्रम भी आवश्यक नहीं है। अन्य पात्र उतने आवश्यक नहीं होते। लेकिन उपन्यास में उन सभी का भी महत्व है"।[1]..

जीवनीपरक उपन्यास में वर्णनात्मकता का भी सहारा लिया जाता है। जिस व्यक्ति की जीवन कथा लिखी जा रही है उसके जीवन की समस्त घटनाओं का वर्णन किया जाता है। इस प्रकार के उपन्यासों में संवादात्मकता भी होती है।

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन पर आधारित जीवनीपरक उपन्यास रांगेय राघव विरचित 'मानस का हंस' में लेखक ने सहज-सरल खड़ी बोली का प्रयोग किया है। लेखक ने तुलसीदासजी से खड़ी बोली हिंदी में बात करवाई है। उदाहरण के लिए "मानस में, विनय के पदों में, कवितावली और दोहों में अपनी अनेक रचनाओं में मैंने अपने जीवन की अनुभूतियाँ ही तो समर्पित की हैं। आज शमशान में उस पण्डित ने दम्भ वश यह लांछन लगाया कि नारी के प्रति मेरे मन में घृणा और उपेक्षा का भाव है"।[2]..

गोस्वामी तुलसीदास केवल ब्रज और अवधी भाषा के ही जानकार नहीं थे बल्कि वे देवभाषा संस्कृत के भी बड़े अच्छे जानकार थे। कदाचित यही कारण है कि लेखक ने तुलसीदासजी के विषय में बात करते हुए संस्कृत भाषा का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए

दुर्जना: शिल्पिना दासा दुष्टस्य पटहा: स्त्रिय:

ताड़िता मार्दव यांति नते सत्कार भाजनम।।[3]..

गोस्वामी तुलसीदास चूँकि अवध प्रांत के निवासी थे परिणाम स्वरुप उनके जीवन पर केंद्रित उपन्यासों में अवधी भाषा का प्रयोग होना एक स्वभाविक बात है। उदाहरण के लिए "बहती दीवार के कोने का निरीक्षण करके रामदुलारे बोला ई मूसन की करतूत है। ऊपर नाज सुखावा गवा रहै ना। अबहीं ठीक होत है दादा, महाराज जी का दूसरा कोठरी माँ लै जाव"।[4]..

इस उपन्यास में वर्णित वर्णनात्मक शैली है। "रामबोला नाम धारण करके कंधे पर छोटी-सी गाँठ बंधी झोली लटकाए हाथ में एक संटी लिए ऐसे ठाठ के साथ भीख माँगने के लिए पार्वती अम्माँ के संग जाया करते थे कि मानो त्रैलोक्य विजय के लिए जा रहे हों"।[5]..

इस उपन्यास में लेखक ने मराठी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया है। तुलसीदासजी जब शेष सनातन महाराज के यहाँ रहते थे तब उनका परिचय कुछ मराठी भाषी व्यक्तियों से भी हुआ था। जीवनीपरक उपन्यास में केवल वही व्यक्ति महत्वपूर्ण नहीं होता है जिसकी जीवन-कथा लिखी जा रही हो बल्कि उस व्यक्ति के जीवनकाल में जो, जो व्यक्ति उसके सम्पर्क में आते हैं वे भी बड़े महत्वपूर्ण होते हैं और लेखक जिस प्रांत या क्षेत्र के पात्रों की चर्चा अपने उपन्यास में करता है तो उस प्रांत की भाषा-बोली का भी वह उल्लेख करता है। परिणाम स्वरूप यहाँ मराठी भाषी पात्र की बातचीत को उपन्यासकार ने मराठी शैली में ही प्रस्तुत किया है। उदाहरण के लिए "खर आहे। ते मी विसरलोच हो तो"।[6]..

सूरदास के जीवन पर आधारित 'खंजन नयन' उपन्यास अमृतलाल नागर के द्वारा लिखा गया है। इस उपन्यास में सहज-सरल तदभव शब्दों और ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग किया गया है। इस उपन्यास में ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग होना एक अत्यंत ही स्वभाविक बात है। सूरदासजी स्वयं ब्रज क्षेत्र के निवासी थे और बात यहाँ यह है कि कोई भी रचनाकार जिस व्यक्ति की जीवन-कथा लिपिबद्ध करता है तो उपन्यास में उस अंचल

की भाषा का उभर आना एक अत्यंत ही स्वभाविक बात है जिस क्षेत्र का वह निवासी है। उदाहरण के लिए ठाकुर श्री रामकृष्ण के जीवन पर आधारित उपन्यास जिसकी रचना डॉक्टर कृष्णबिहारी मिश्र ने की है उसमें भी खड़ीबोली हिंदी के साथ-साथ बंगला भाषा के शब्द का भी प्रयोग देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए "रसे बशे राखिश माँ"। यह कथन श्री रामकृष्ण का है और यह कल्पतरु की उत्सव लीला नामक उपन्यास की पृष्ठ संख्या 23 में वर्णित है। इस उपन्यास में प्रयुक्त सरल-सहज तदभव शब्दावलियों के साथ ब्रजभाषा के शब्दों का प्रयोग इस प्रकार है "वृंदावन से लगभग दो कोस पहले ही पानी गाँव के पास वाले किनारे पर खड़े चार-छह लोगों ने सुरीर से आती हुई नाव को हाथ हिला-हिलाकर अपने पास बुला लिया – मथुरा मती जइयों। आज खून की मल्हारें गाई जा रही हैं वाँपे"।[7]..

आलोच्य गद्यांश को ध्यान से पढ़ने पर यह ज्ञात होता है कि इसमें 'मथुरा मती जाइयो'। वाक्य ब्रजभाषा का है। इतना ही नहीं इस गद्यांश में प्रयुक्त 'वाँपे' शब्द भी ब्रजभाषा का ही है। उन्होंने वर्णनात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए "नाव बह रही है। वृंदावन पीछे छूट गया। सूरज का मन भारी होता जा रहा है। घर की याद तो बहुत दूर हो गई। मन कहीं रमता भी है तो माँ के ध्यान में। परिवार की सामूहिक मृत्यु के क्षण नौ वर्ष पहले आए तो थे पर मरी केवल परिवार की समृद्धता ही, व्यक्ति बच गए। किंतु अब जिनसे कुछ ही दिन पहले नेह-नाता जुड़ा, जनम का नाता नए सिरे से जुड़ा, उन स्नेह-सिंधु को आज मध्यरात्रि से पूर्व मृत्यु की मरुभूमि सोख लेगी"।[8]..

इस प्रकार लेखक ने इस उपन्यास में "ब्रज भाषा" में रचित काव्य पंक्तियों के माध्यम से गद्य-पद्य की एक अत्यंत ही सुंदर शैली का प्रयोग किया है। यहाँ एक और बात यह भी है कि जब यह उपन्यास सूर के जीवन पर आधारित है तब अगर उनके द्वारा रचित श्री कृष्ण की भक्ति से सम्बंधित काव्य पंक्तियों का उल्लेख न किया जाए तब तो वर्णन ही अपूर्ण होगा क्योंकि सूरदास की पूर्ण छवि उपन्यास में अभिव्यक्त न हो पाएगी।

आलोच्य उपन्यास में लेखक के द्वारा उल्लेखित सूरदास विरचित ब्रजभाषा के पदों का उदाहरण इस प्रकार है

"प्रभु, मेरे गुन अवगुन न बिचारौ

कीजै लाज सरन आए की रवि सुत त्रास निवारौ।।
जाग जज्ञ जप तप नहिं कीन्हौ, वेद विमल नहिं भाख्यौ।
अति रस लुब्ध स्वान जूठनि ज्यौं अनत नहीं चित्त राख्यौ"।।[9]..

हिंदी के भक्तिकालीन कवि सूरदास के जीवन पर आधारित "खंजन नयन" नामक अपने इस उपन्यास में लेखक ने सहज-सरल खड़ीबोली का प्रयोग किया है। लेखक द्वारा प्रयुक्त खड़ीबोली शैली का उदाहरण है "भादो के दिन। आकाश पर बादल तो प्रायः छाए रहते हैं। पर इस वर्ष वर्षा संतोषजनक नहीं हुई। बीजारोपण हो चुका है अब बरसे तो बात बने। किसान प्रायः खाली ही हैं। दूध का धंधा करने वाले भी पहर-भर दिन चढ़े तक ही छुट्टी पा जाते हैं। इसलिए सूर के भागवत गायन की सभा में दाऊ बाबा की कृपा से पहले दिन ही भीड़ अच्छी हो गई थी और उसी दिन से सूर स्वामी के कंठ का जादू गोकुल के नर-नारियों के सिरों पर चढ़कर बोलने भी लगा था। दूसरे, तीसरे दिन, दिनों-दिन सूरज की लोकप्रियता का मानदंड बढ़ता ही गया"।[10].. आलोच्य गद्यांश में प्रयुक्त संस्कृत भाषा के शब्द हैं बीजारोपण, सभा, कृपा, संतोषजनक, नर-नारी, स्वामी, कंठ, आकाश, वर्षा, वर्ष, गायन, भागवत। तदभव शब्द हैं किसान, भादो, दिन, दूध, सूरज। जहाँ तक दाऊ शब्द की बात है यह शब्द ब्रजभाषा का है। ब्रज भाषा में दाऊ बड़े भाई को कहा जाता है।

हिंदी के जीवनीपरक उपन्यासों में लेखक रांगेय राघव विरचित तुलसी के जीवन पर आधारित 'रत्ना की बात' उपन्यास भी है। शैली के दृष्टिकोण से देखा जाए तो इस उपन्यास का प्रारम्भ सुंदर वर्णनात्मक शैली के माध्यम से होता है। प्रातःकालीन समय में प्रकृति के अत्यंत सुंदर वर्णन के माध्यम से उपन्यास की शुरुआत होती है। यह वर्णन इस प्रकार है "भोर हो गई। पहली किरण ने हल्का-सा आलोक फैलाया, तब पक्षी कल-कल निनाद करते हुए आकाश में उड़ चले और काशी के घाटों पर भोर की जगार सुनाई देने लगी। धीरे-धीरे आलोक अंधकार के साथ ताँम्बे की चमक से भर गया और वह गंगा की गम्भीर और विस्तृत धारा पर झलकने लगा.... उधर अपने अंगों को सिकोड़कर अपनी साड़ी खींचकर अपना शरीर ढाँक लेने का प्रयत्न करती, इधर यह पवन भी अपने दाह को खींचकर बोझिल होने लगा"।[11]..

इस उपन्यास में तत्सम, तदभव शब्द युक्त खड़ी बोली का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए "भगवती पतिततारिणी जाह्नवी के प्रति निकले हुए वे शब्द धीरे-धीरे आने-जाने वालों के कानों में गूँजने लगे, जिनको सुनकर अंधरे ही में पथों पर झाड़ू लगा चूकने वाले मेहतर अब वहाँ से भाग निकले, ताकि अपने दर्शन से वे उच्च जाति के पवित्र लोगों को प्रातःकाल ही अशुभ के सम्मुख न ले जा सकें। उस समय भी करोड़ों मन जलराशि गंगा में बही जा रही थी, जैसे शाश्वत होकर वह धारा बही जा रही हो। ... और ठोड़ी पर काली दाढ़ी के बाल करे से उग आए थे। घर की दीवारों पर काई जम गई थी। उस तरुण को देखकर कोई घाट पर धीरे-धीरे चढ़ने लगा"।[12]..

गोस्वामी तुलसीदास के जीवन को आधार बनाकर लिखे गए इस उपन्यास में भी संवादात्मक-शैली का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए

"गुरुदेव"!!

"कौन ? नारायण " ?

"गुरुदेव यह आप क्यों दोहरा रहे हैं" ?

"बेटा ! जितनी बार नाम मुँह से निकले उतना ही अच्छा है। अब उसके सिवाय सुननेवाला कौन है" ?

"पर इतनी प्रार्थना करने से भी तो कुछ नहीं हुआ" ?

"राम-राम ! बेटा ! ऐसा न कह। पाप की बात न कर। दींबंधु के दरबार में पहुँचना सहज नहीं है"।[13]..

जीवनीपरक उपन्यास लोई का ताना कबीर की जीवनी पर आधारित है और यह उपन्यास रांगेय राघव के द्वारा लिखा गया है। आलोच्य उपन्यास की शुरुआत संवादात्मक शैली के माध्यम से होती है। इस संवाद में कबीर के पुत्र कमाल किसी से बात करते हुए अपना परिचय प्रदान करते हैं कि वे कौन हैं और कबीर वास्तव में क्या थे। उदाहरण के लिए लेखक रांगेय राघव लिखते हैं कि "मैं कमाल हूँ। मेरे बाप का नाम कबीर था और माँ का नाम लोई था।

तुम कहते हो ?

काशी में जुलाहे का काम करता हूँ।

तो फिर यहाँ क्यों आए हो ? यह तो हरिद्वार है।

जानता हूँ लेकिन क्या करूँ ? भटका फिरता हूँ।

क्यों ऐसी क्या मुसीबत आ गई तुमको।

मैं तुम्हें कैसे बताऊँ ?

शादी हो गई ?

नहीं।

तो बताने को बाकी क्या रह गया ! घर में प्रबंध नहीं है तो अपनेआप साधु बन जाओगे। लेकिन कबीर का नाम तो लोगों ने सुना है। वह तो आदमी साधु था न ?[14]..

इस उपन्यास को लेखक ने विभिन्न अध्यायों में विभाजित किया है। इसके पहले अध्याय का नाम 'उपसंहार' है, ओर इसके दूसरे अध्याय का नाम है 'उपसंहार से पहले'। इसी प्रकार इस उपन्यास के तीसरे अध्याय का नाम है 'सूर्य अस्त हो गया। उपन्यास के चौथे अध्याय का नाम है "लोई का ताना"। पाँचवें अध्याय का नाम है "आरम्भ" और छठवें अध्याय का नाम है "मरजीवे को तो देखो" इस प्रकार लेखक रांगेय राघव ने इस उपन्यास को कुल छे अध्यायों में विभाजित किया है। ऐसी बात नहीं है कि लेखक रांगेय राघव ने अपने लोई का ताना नामक उपन्यास के पहले अध्याय में केवल संवादत्मकता का ही वर्णन किया है बल्कि संवादात्मकता के साथ ही साथ उन्होंने संगीत-शैली का भी प्रयोग किया है उदाहरण के लिए उपन्यास का पात्र कमाल जब ब्राह्मण पण्डित के यहाँ से जाने लगता है तब वह समाज में प्रचलित ब्राह्मणों के ढकोसले के विषय में संगीत के माध्यम से बताता है जो इस प्रकार है

"सुनता नहीं धुन की खबर,

अनहद बाजा बजाता।

रस मंद मंदिर गाजता,

बाहर सुने तो क्या हुआ।।[15]..

दूसरे अध्याय का नाम है 'उपसंहार से पहले' इस अध्याय में कबीर की मृत्यु के बाद लोगों के आपसी संघर्ष का वर्णन किया गया है।

इस उपन्यास में लेखक ने कबीर की झाँकी प्रस्तुत की है। स्वयं लेखक ने इस उपन्यास की भूमिका में ही लिखा है "प्रस्तुत ग्रंथ में कबीर की झाँकी है"।[16].. आलोच्य उपन्यास में प्रथम पुरुष की शैली में बात रखी गई है। "मैं कमाल ही हूँ। मैं उस दृश्य को भूल जाना चाहता हूँ परंतु भूल नहीं पाता। क्या करूँ" ?[17]..

इस उपन्यास में भी वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए "शाम हो गई थी।विश्वनाथ के मंदिर में घंटे बजने लगे थे। घनन-घनन का नाद गूँज रहा था। बाहर बने विशाल नंदी काले पत्थरों के कारण चमक रहे थे। मंदिर के विशाल स्तम्भों पर अंधेरे की विशाल छायाएँ पड़ने लगी थीं। और दीपा-धारों में लटकती दीपशिखाएँ जगमग-जगमग कर रही थीं। असंख्य दर्शनी आते, घंटों को बजाते और फिर भीतर चले जाते, शिवलिंग का दर्शन करते और लौट जाते। भीतर से कभी-कभी समवेत वेदध्वनि उठती और तब गंधधूम और फूलों की सुगंधी काँपने लगती"।[18].. आलोच्य गद्यांश के माध्यम से लेखक रांगेय राघव ने विश्वनाथ के मंदिर के दृश्य का वर्णन किया।

लेखक ने इस उपन्यास के अंतिम अध्याय "उसकी राह अजीब थी" में भी 'अन्य पुरुष' की शैली में अपनी बात रखी है। उदाहरण के लिए "यह तो सत्य ही है कि वह जुलाहा था। नीच जात का था और इसीलिए वह ऊँचे वर्णों को पहले बड़ा मानता था। गुरु रामानन्द से दीक्षा लेकर वह अपने को पवित्र समझने लगा। परंतु शीघ्र ही नाथजोगियों, सूफ़ियों, वेदांतियों ने उस पर प्रभाव डाला। वह उलटबांसी बोलने लगा। ... को बदलना चाहा था। वह तो गरीब था, नीच था। उसके लिए उच्च वर्ण आदर्श नहीं थे, वह उच्चवर्गीय संस्कृति का मोह नहीं करता था। उसके पास सीधी-साधी भाषा थी वह मानव को सर्वश्रेष्ठ मानता था। क्योंकि मूलतः वह मानव था"।[19]..

आलोच्य उपन्यास में सरल खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए –

“मैं कमाल हूँ। मेरे बाप का नाम कबीर था और माँ का नाम लोई था”।[20]..

आलोच्य पंक्ति में एक ओर जहाँ बाप देशज शब्द है, वही दूसरी माँ तदभव शब्द है।

ठीक इसी प्रकार इस उपन्यास में फ़ारसी भाषा के शब्द का भी प्रयोग हमें देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए “शादी हो गई ?”[21]..

इस उपन्यास में देवभाषा संस्कृत के शब्दों का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए शाक्त, वाममार्गी, देवीपूजक, धर्मनाश, सनातन, निमित्त, शूद्र, साधु, संत, पण्डित, कुलीन, अलख, निरंजन, मंद, मंदिर, व्याकुल, अवतार, सदगुरु आदि।[22]..

ठीक इसी प्रकार से तदभव शब्दों का भी प्रयोग किया गया है जैसे, पूत, जीभ, कबीर की वाणियों में भोजपुरी भाषा के शब्दों का भी प्रयोग देखने को मिलता है। अतः लेखक ने कबीर के विषय में बात करते हुए और उनके उस पद का भी उल्लेख किया है जिसमें भोजपुरी भाषा के शब्दों का प्रयोग हमें देखते को मिलता है।

“सुगवा पिंजरवा छोरि भागा

दस दरवाजे किवरवा लागा”।।[23].. आलोच्य पंक्तियों में ‘सुगवा’, पिंजरवा’ और किवारवा तीनों शब्द भोजपुरी भाषा के हैं। ठीक इसी प्रकार ‘चदरिया’ शब्द भी भोजपुरी का ही है।

कबीर के पदों में ब्रजभाषा के शब्द का प्रयोग देखने को मिलता है। परिणाम स्वरूप लेखक ने अपने उपन्यास में कबीर के विषय में बताते हुए उनके उन पदों का भी उल्लेख किया है है जिनमें ब्रजभाषा के शब्दों का भी प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए –

“साई को सियत दस मास लागै”।[24].. इस पंक्ति में ‘लागै’ ब्रजभाषा का है।

रांगेय राघव द्वारा रचित ‘यशोधरा जीत गई’ उपन्यास में भी लेखक ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। उपन्यास का प्रारम्भ ही सहज-सरल तत्सम शब्द युक्त खड़ी बोली के माध्यम से होता है। उपन्यास को पढ़ते हुए निरंजना नदी के प्रवाह का जो बिम्ब है वह

पाठकों के नेत्रों के समक्ष उभरता चला जाता है। ऐसा प्रतीत होता है कि जैसे लेखक के साथ पाठक भी बुद्ध के साथ-साथ नदी के किनारे पहुँच चुका है। वर्णन इस प्रकार शुरू होता है "निरंजना नदी अपनी गम्भीर गति से बहती चली जा रही थी। जल का कल-कल निनाद तीरस्थ वनभूमि में अपनी हल्की गूँज प्रतिध्वनित कर रहा था। उरूवेला की प्राचीन भूमि में तीर पर खड़े अश्वत्थ वृक्ष की छाया में एक पैंतीस वर्ष का युवक गम्भीर मुखाकृति लिए खड़ा था।[25]..

इस उपन्यास में लेखक रांगेय राघव ने सहज-सरल संस्कृत के शब्दों से युक्त खड़ी बोली का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए "सुनहले कम्बल जैसे सांध्य गगन को देखकर धीरे से बुदबुदाया नहीं मैं पीछे नहीं लौट सकता। मैं इतना आगे आ गया हूँ कि मेरे लिए लौटने के सब द्वार बंद हो गए हैं। ... तब उसमें यदि मुझको संतोष नहीं मिला तो किस विपर्यय से आज इस साधना से विमुख होकर, पराजित होकर मुझे फिर वही विश्राम मिल सकेगा, यह तो असम्भव है" ?[26].. इस उपन्यास में लेखक ने अध्यायीकरण को भी अपनाया है। उदाहरण के लिए इस उपन्यास को तीन अध्यायों में बाँटा गया है जो इस प्रकार है प्रथमा, मध्यमा और उत्तरा। एक ओर जहाँ प्रथमा नामक अध्याय में कथा की शुरुआत सिद्धार्थ जो एक राजकुमार हैं संसार में प्रचलित दुःख-दर्द आदि से मुक्त होने के लिए और इस अमूल्य मानव जीवन में शाश्वत शांति की प्राप्ति के लिए सिद्धार्थ के गृह त्यागकर निरंजना नदी के तट पर आने से शुरू होती है। उपन्यास जैसे-जैसे आगे बढ़ता चला जाता है राजकुमार सिद्धार्थ की जन्म-कथा, उनके परिणय की कथा का उल्लेख भी इसी अध्याय में है। साथ ही साथ एक राजकुमार होने के नाते उनके विलासितापूर्ण जीवन का एक परिचय भी इसी अध्याय में मिलता है। मानव जीवन की तीन सच्चाइयों जरा, मरण एवं व्याधि से भी उनका परिचय इसी अध्याय में लेखक ने दर्शाया है। इसी अध्याय में उनके मन में संसार के वास्तविक सत्य को जानने का एक दिव्य भाव उदय होता है। एक वैराग्य भाव का उदय होता है। उदाहरण के लिए मानव जीवन में आने वाले रोग, वृद्धावस्था आदि के विषय में बुद्ध अपनी भार्या से जो कहते हैं वह इस प्रकार है "रोग, बुढ़ापा यह तो मनुष्य मात्र के शत्रु हैं। क्या इनसे भी मनुष्य जीत नहीं सकता ? मैं जीतूँगा आर्ये"![27].. इस उपन्यास

में भी संस्कृतनिष्ट खड़ी बोली के शब्दों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए लेखक लिखते हैं कि "काल उदायी, तू कहता था कि तू सुखी है। बचपन में भ्रातर देवदत्त लड़ता था। नंद मेरे साथ रहता था, तब तू ही लोगों को हँसाया करता था। क्या एक दिन तू भी नहीं रहेगा ? पुरानी दासियों में कुछ मर गई हैं। उनकी याद क्यों नहीं आती ... क्या था यह सब ! स्नेह के माध्यम से एक-दूसरे के निकट आना। परंतु निकट आ ही कब सके ? हमारे कुल, जाति और धर्म के बंधन हैं, जो मनुष्य को मनुष्य के समीप नहीं आने देते"।[28]..

गौतम बुद्ध के जीवन पर लिखी गई इस उपन्यास के तीसरे अध्याय का शीर्षक है 'उत्तरा' इस अध्याय में कथा का प्रारम्भ सिद्धार्थ जोकि अब बुद्ध बन चुके हैं उनके पुत्र राहुल के कथन से शुरू होता है। गौतम बुद्ध के गृह त्याग के बाद भी उनकी भार्या मन में निहित वेदना को लेकर वह बुद्ध के पैतृक आवास में ही रहती है। उस आवास को त्यागकर नहीं जाती है। इसमें संस्कृत भाषा की शब्दावलियों का प्रयोग प्रचुर मात्रा में किया गया है। उदाहरण के लिए लेखक लिखते हैं कि "कालउदायी ने आकर शुद्धोधन का अभिवादन किया और विषण्णवदना भद्रा को देखकर प्रणाम किया और कहा भ्रातृजाया सकुशल तो हैं"।[29].. इस गद्यांश में भद्रा, अभिवादन और भ्रातृजाया शब्द देवभाषा संस्कृत के हैं। इतना ही नहीं सकुशल शब्द भी संस्कृत भाषा का है। भाषा अत्यंत ही सहज है।

लेखक रांगेय राघव द्वारा लिखित 'मेरी भववाधा हरो' उपन्यास की शुरुआत भी वर्णनात्मक शैली से होती है। उदाहरण के लिए लेखक लिखते हैं कि "नीले आकाश में पक्षी दल के दल लौट चले। मटमैली छाया पहले छितराए बादलों में कसमसाती रही, फिर बैलों के गलों में लटकी घंटियों की गूँजती आवाज में मिलकर, उड़ती हुई धूल पर लोटने लगी। पेड़ों के नीचे सूरज डूब गया।अंधेरा छाने लगा। पक्षियों का कलरव अब बढ़ चला। हवा में एक सीरी-सी सिहरन व्यापने लगी"।[30]..

इस उपन्यास में भी संस्कृत के शब्दों का प्रयोग देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए वंशभास्कर, ज्योतिष। इस उपन्यास में संवादात्मकता का भी प्रयोग किया गया है। उदाहारण के लिए लेखक लिखते हैं कि "बिहारी ने कहा मुझे गाना सिखाएँगी आप" ?[31]..

“ज़रूर सिखाऊँगी। मुझे न जाने क्यों लगता है, न जानती क्यों लगता है कि बिहारी तू एक दिन बड़ा आदमी हो जाएगा। तेरे गुरु के साथ तुझे भी लोग याद करेंगे”।[32]..

आलोच्य उपन्यास के विषय में चर्चा करते हुए लेखक ने बिहारी के द्वारा रचित दोहों का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए जब नरहरिदास ने केशवराय से यह पूछा कि उनके आत्मज बिहारीलाल ने उनसे क्या कहा है तो उनका कहना था कि उनके पुत्र ने उन्हें सब कुछ बता दिया है। केशवराय ने कहा

“अति अगाध, अति अथरौ नदी कूप सरु बाइ।

सो ताको सागर, जहाँ जाकी प्यास बुझाइ”।[33]..

इस उपन्यास में खड़ी बोली के सरल शब्दों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए “क्या कहा था, यों ही कह दिया था कि भाभी का हार वे ही बनवाकर लाए थे। बोले, बेटी तो तेरे लिए जो कर सकते थे कर चुके। अब तू पराई हुई। अब तो जो करे तेरे लिए वह करे। सुना तुमने ! जीजी आई थी अपना जड़ाऊ हार पहने तो यही काकाजी बोले थे, एक उसने दिया है तो क्या एक नहीं दे सकते। एक ही घर की लड़कियाँ हैं दोनों। मैं क्या कुछ नहीं समझती ? पहले साल तो ठीक चला था। पर इधर तो जाने कैसे सब की आँखें पलट गईं। फिर एक लम्बी साँस छोड़कर कहा सबके दिन फिरते हैं”।[34].. इस गद्यांश में संस्कृत भाषा के शब्दों का प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए सरिता, तरु, दंड, दुष्ट, शाखा, हृदयस्थली, सदैव, दुर्वचन, स्रोत, वास्तविक, प्रेम, कुठार, निरंतर, दृढ़ श्रृंगार, भूमि, प्रसन्न, तट, वृक्ष, विचित्र, प्रसन्न, निरंतर।

अब तक उपन्यास में वर्णित तत्सम-तदभव मिश्रित खड़ी बोली के शब्दों के विषय में चर्चा हुई है। यह उपन्यास रीतिकालीन कवि बिहारी के जीवन पर आधारित है तो उपन्यास की भाषा-शैली में ब्रजभाषा के शब्दों का आना स्वभाविक है। इस उपन्यास में भी लेखक रांगेय राघव ने बिहारी की जीवन-कथा कहते हुए आवश्यकता के अनुसार बिहारी के दोहों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए बिहारी जब जयपुर नरेश जयसिंह की राजसभा में पहुँचे तो दूसरे दिन उन्होंने अपने दोनों हाथ उठाकर महाराज को संस्कृत भाषा में आशीर्वाद दिया और उन्होंने इस प्रकार गाया

“सामां सेन, समान की, सबै साहि कै साथ।

बाहुबली जयसाहि जू, फते तिहारे हाथ ।।

पर घर तुरुकिनि, हिंदुनी, देति असीम सराहि।

....

प्रतिबिम्बित जयसाहि दुति, दीपति दरपन धाम।

सबु जग जीतन कौं करयौ काम-ब्यूह मनु काम”।।[35]..

विद्यापति के जीवन को आधार बनाकर भी लेखक रांगेय राघव ने उपन्यास का सृजन किया है जिसका शीर्षक है ‘लखिमा की आँखें’ इस उपन्यास में भी लेखक ने खड़ी बोली के सरल शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरण हेतु “मैं कब से कहना चाह रहा हूँ किंतु कह नहीं पाया, न जाने क्यों ऐसा लगता है कि जो कुछ मैं अपने शब्दों में बाँध देना चाहता हूँ वह वास्तव में भावनाओं की बात है। हो सकता है कुछ लोग यही अनुभव करें कि मनुष्य को जीवन में कुछ न कुछ सहारा अवश्य ही चाहिए और उसी की खोज में मैंने अपने लिए एक बहाना बना लिया है क्योंकि वैसे देखा जाए तो दुनियादारी के शब्दों में मेरी कोई गिरस्ती नहीं है। यों ही मैं घूमता-फिरता हूँ। ... वह परिवार उत्कलवासी था और घर लौट रहा था। सब साथ ही चले। उस परिवार के लोग सहजयानी थे, किंतु मुसलमानों के आतंक के कारण बौद्ध सदा ही अपने को छिपाते हैं”।[36].. आलोच्य गद्यांश में संस्कृत भाषा के सहज-सरल शब्द इस प्रकार हैं ब्राह्मण, शिक्षा, अनुभव, मनुष्य, शाला, परिवार, आतंक, उत्कल (ओडिशा का प्राचीन नाम) परंतु, जाति, दर्शन, सदा, वास्तव, भावना, सहजयानी। वही दुनियादारी अरबी शब्द है। लौटना देशज शब्द है। लड़का शब्द हिंदी का है। सीख शब्द तदभव शब्द। यह शब्द संस्कृत भाषा के शिक्षा शब्द का हिंदी रूपांतरण है। इस उपन्यास में भी लेखक ने वर्णनात्मक शैली का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए “अभी मैं यह सब निर्णय भी नहीं कर पाया था कि वन में जलती मशालें चलती दिखाई देने लगीं। उनको देखकर मुझे लगा कि वहाँ ब्रह्मराक्षसों का कोई निवास था, तभी वे उल्काएँ जगमगा रही थीं। यह भी सम्भव हो कि वे कापालिक से जो नरबलि ढूँढने निकले हों। ... उसके

लिए तो सब कुछ ख़त्म हो चुका था। उसे कोई भय नहीं था। वह मिट्टी हो चुका था। आज सोचता हूँ कि क्या मिट्टी नहीं डरती ? अब मशालों की ज्योति निकट आने लगी थी और साथ ही घोड़ों की टापें भी सुनाई देने लगी थीं"।[37]..

'कल्पतरु की उत्सव लीला' नामक उपन्यास डॉक्टर कृष्णबिहारी मिश्र द्वारा लिखित है। इस उपन्यास को मिश्रजी ने कई अध्यायों में बाँटा है जैसे पहला अध्याय है 'रसो वै सः', दूसरे अध्याय का नाम है 'कामारपुकुर का सौभाग्य', तीसरे अध्याय का नाम है 'गँवई सुरभि महानगर में', चौथे अध्याय का नाम है 'कल्पतरु की उल्लसित भूमिका'। इसी प्रकार इस उपन्यास में और भी कई अध्याय हैं। उपन्यास का प्रारम्भ अन्य पुरुष की शैली में होता है। पहले अध्याय को पढ़ने से ही यह ज्ञात होता है कि ठाकुर श्री रामकृष्ण मास्टर महेंद्रनाथ गुप्त को उनसे जुड़े हुए तमाम सारे लोगों जैसे प्रतापचंद्र हाजरा केशवचंद्र सेन आदि लोगों के विषय में बताते हैं। बात अन्य पुरुष की शैली में शुरू होती है। उदाहरण के लिए रामकृष्ण अपने भांजे के बारे में कहते हैं कि "ऐसा ही हुज्जती हृदय था। लाख समझाओ काहे को अपनी राह छोड़े। देश से आया था मामा की सेवा करने। जितनी सेवा करता था, उससे अधिक यातना देता था। उसके ताने की याद आती है तो आज भी मन रोने-रोने को हो जाता है।... कुछ दिनों के बाद आकर मेरे पैरों पर माथा पटककर गिड़गिड़ाने लगा कि मामा मुझे अपनी सेवा में रख लो। जैसे मामा की ज़मींदारी हो। रासमणि के नाती ने तुझे बगीचे से निकाला है, मामा की क्या जो रख ले ! मामा जादू मंतर तो जानता नहीं"।[38].. इसमें उपन्यासकार ने बंगला भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। इसका मूल कारण यह है कि लेखक ने अपने इस उपन्यास में भारत के जिस महापुरुष का वर्णन किया है उनकी मातृभाषा बंगला है और उस महापुरुष के मुख से ही उनके निकट आने वाले व्यक्तियों का परिचय एक दूसरे व्यक्ति को दिलवा रहे हैं ऐसे में स्वभाविक बात है कि उपन्यास की भाषा में बंगला भाषा के शब्द आए। उदाहरण के लिए "कामधेनु को छोड़कर लोग छागल पोसते हैं"।[39]..

यहाँ छागल शब्द बंगला भाषा का है। बंगला में छागल बकरी को कहते हैं। इस पंक्ति में प्रतीकात्मकता का भी प्रयोग किया गया है। आलोच्य पंक्ति में अपने पात्र रामकृष्ण के माध्यम से लेखक ने पाठकों को यही बताया है कि माँ की भक्ति ठाकुर रामकृष्ण के लिए पौराणिक काल में सागर-मंथन से निकली हुई माता कामधेनु के समान है क्योंकि ठाकुर रामकृष्ण के लिए माँ भवतारिणी की भक्ति भी उनके मन की समस्त प्रकार की अभिलाषाओं की पूर्ति करती है। आलोच्य गद्यांश में शकुन, पाखी और गाछ्छ ये तीनों ही शब्द बंगला भाषा के हैं।

इस उपन्यास में देशज शब्द का भी प्रयोग किया गया है। उदाहरण के लिए लेखक ने अपने उपन्यास के पात्र ठाकुर श्री रामकृष्ण से उनके शिष्य गिरीश घोष के लिए कहलवाते हैं "गिरीश बहुत गरीआता था"।[40].. यह देखते हैं कि लेखक कृष्णबिहारी मिश्र ने अपने इस उपन्यास में संस्कृत भाषा के शब्द का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए "यह मुहूर्त नहीं मिलेगा रे अभागे"! इस पंक्ति में 'मुहूर्त' शब्द संस्कृत भाषा का है।

इस उपन्यास में बंगला के भक्तिमूलक संगीत का भी प्रयोग किया गया है यह संगीत इस प्रकार है

"मन, चलो निज निकेतने।

संसार विदेशे विदेशीर वेशे भ्रम केनो अकारने ?

विषय पंचक आर भूतमन, सब तोर पर, केहो नय आपन,

पर प्रेमे केनो हये अचेतन भूलिछ आपन जने ?

सत्य पथे मन करो आरोहन, प्रेमेर आलो ज्वाली चलो अनुखन,

संगे ते सम्बल राखो पुन्य धन गोपने अति जतने।[41]..

इस उपन्यास में लेखक ने मुहावरा का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए "ब्राह्म आचार्य है। विलायती भाषा में भाषण देता है तो बड़े-बड़ों का पानी उतर जाता है"।[42]..

इसमें भी वर्णात्मक शैली का प्रयोग देखने को मिलता है उदाहरण के लिए अपने उपन्यास के पात्र ठाकुर श्री रामकृष्ण के झामापुकुर नामक स्थान का वर्णन करवाते हुए

कहलवाते हैं कि “कामारपुकुर में सौंदर्य का अभाव नहीं था। और झाँमापुकुर में भी संभ्रांत कुल की बहुओं का रूप देखा था। पर बकुलघाट पर नौका से मेरी माँ ने अपने बगीचे में जिस सौंदर्य-राशि को उतारा था उस दिन, वैसा अपरूप रूप कभी नहीं दिखाया था। .... और बामुनी से बतियाने के लिए मन पगला हो उठा। मेरी साध हृदय ने उस तक पहुँचाई, मामा आपसे बतियाने के लिए व्याकुल हैं माँ। मेरी कुटिया में पहुँचते ही भैरवी ने कहा बाबा तू छिपकर यहाँ बैठा था। तुझे ढूँढ़ते यहाँ-वहाँ भटकती रही। पर इतना जानती थी कि गंगा तट पर ही तुझे पाऊँगी”।[43]..

उपन्यास में वर्णित विभिन्न पात्रों के बीच लेखक आपसी संवाद करवाता है। उदाहरण हेतु ‘पहला गिरमिटिया’ उपन्यास में लेखक गिरिराज किशोर लिखते हैं कि “अब्दुल्ला सेठ बोले, गाँधी भाई, आपने अच्छा किया फेटा नहीं उतारा”। लेकिन पगड़ी तो आप भी पहने हुए थे” ? मैं बताना भूल गया, सिर्फ़ अरबों को ही पगड़ी पहनकर कोर्टरूम में जाने की इजाज़त है”। “अरब कौन” ? “मुसलमानों को यहाँ अरब कहते हैं”। गाँधी कहते हैं कि “भारतीय मुसलमानों को भी” ? अब्दुल्ला कहते हैं कि “हाँ”। गाँधीजी कहते हैं कि “आपलोग इसका एतराज़ नहीं करते”।[44].. इसके साथ ही लेखक गिरिराज किशोर ने इस उपन्यास में अन्य पुरुष की शैली का भी वर्णन किया है। उदाहरण के लिए “मोहनदास यह बात कहते-कहते रुक गया। दादा अब्दुल्ला की नजरें अभी तक महोनदास से नहीं मिली थीं”।[45]..

लेखक गिरिराज किशोर द्वारा लिखित पहला गिरमिटिया नामक उपन्यास में पत्रात्मक शैली भी अपनाई गई है। उदाहरण के लिए उन्होंने अफ़्रीका के विभिन्न आखबारों के पत्र का एक मसौदा तैयार किया। यह पत्र इस प्रकार है

श्रीमान,

मैं एक भारतीय हूँ। लंदन से बैरिस्ट्री पास की है।... पच्चीस मई को अब्दुल्ला कोर्टरूम ले गए थे। मैं गुजरात का रहने वाला हूँ। ... उसे उतारना दोनों की बेज्जती समझी जाती है।

वह राष्ट्रीय सम्मान और आत्मसम्मान का प्रतीक है। ... अरब पगड़ी पहने तो उनकी पहचान पहनें तो कोर्ट का असम्मन। यह कैसा भेदभाव ? मेजिस्ट्रेट के आदेश को मानना मेरे लिए सम्भव नहीं था। ...हिंदू, मुसलमान, पारसी सब भारतीय पहले हैं। ...इस भेदभाव और मजिस्ट्रेट द्वारा किए गए अपने अपमान का विरोध दर्ज कराना चाहता हूँ।

भवदीय

एम०के० गाँधी"। [46]..

लेखक ने इस उपन्यास में प्रथम पुरुष या मैं शैली को भी अपनाया है जहाँ उपन्यास का पात्र स्वयं अपनी बात कहता है। उदाहरण के लिए "जब दादा अब्दुल्ला की कम्पनी के सामान के सिलसिले में गाँधीजी को सेठ तैयबजी के यहाँ जाना था जो कि एक बहुत बड़े व्यापारी और सेठ अब्दुल्ला के रिश्तेदार भी थे तो गाँधीजी से जब सेठ अब्दुल्ला ने कहा कि वे कहाँ ठहरेंगे। ... गाँधीजी ने अब्दुल्ला से प्रश्न किया कि "आप कहाँ चाहते हैं कि मैं कहाँ ठहरूँ" ?[47]..

इस उपन्यास में लेखक ने अंग्रेज़ी भाषा के शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए जैसे लेखक अपने पात्र गाँधी से कहलवाता है कि "मैं बैरिस्टर हूँ"।[48].. यह घटना उस समय की है जब गाँधीजी डरबन से प्रिटोरिया की यात्रा कर रहे थे।

सभी इस बात से विदित हैं कि महात्मा गाँधी की मातृभाषा गुजराती थी। अतः उपन्यास में गाँधीजी के वार्तालाप में गुजराती भाषा का शब्द आना एक स्वभाविक बात है। उदाहरण के लिए गाँधीजी अबूबकर से कहते हैं कि "आप जिस प्यार से खाना लाए, मुझे अपने एक दोस्त और अपनी बा का ख़याल आ गया ...."।[49]..

इस गद्यांश में 'बा' शब्द का प्रयोग किया गया है। गुजराती भाषा में बा, माँ को कहते हैं। जिस व्यक्ति की जीवन कथा को लेकर उपन्यासों का सृजन करते हैं तो वह व्यक्ति जिस समाज से जुड़ा हुआ होता है उस समाज और संस्कृति में प्रचलित शब्दों को अनदेखा नहीं किया जा सकता है। ...गौरतलब है कि गाँधीजी सेठ अब्दुल्ला से अपनी मातृभाषा

गुजराती में ही वार्तालाप किया करते थे। ठीक इसी प्रकार यहाँ 'फेटा' शब्द का भी प्रयोग किया गया है। फेटा शब्द भी गुजराती भाषा का ही है। गुजराती में फेटा पगड़ी को कहते हैं। उदाहरण के लिए अब्दुल्ला सेठ कहते हैं कि "कुछ भी कहिए गाँधी भाई हैं तो हिम्मती। आपलोगों ने आखबारों में नहीं देखा, हफ़्ते भर पहले गोरे मजिस्ट्रेट को पानी पिला दिया था। उसके हुक्म पर फेटा तो उतारा नहीं, आखबारों में छापकर दुनिया को बता दिया, गोरे मेजिस्ट्रेट ने उसकी बेज्जती की। लोगों के दिलों पर उस बात का असर तो हुआ ही"।[50]..

हिंदी एक समावेशी भाषा है। अतः इसमें कई भाषाओं के शब्द हमें देखने को मिल जाते हैं। जैसे अरबी, फ़ारसी, उर्दू, अंग्रेजी, जापानी आदि। यही कारण है कि हिंदी भाषा में जो उपन्यास लिखे जाते हैं उसमें विभिन्न भाषा के शब्दों का आना भी स्वभाविक है। लेखक लिखते हैं कि "दादा अब्दुल्ला का चेहरा पहली बार किसी गोरे अफसर की बात पर इतना तमतमा गया था। वे झटके से उठे।... सेठ अब्दुल्ला का ग़ुस्सा एक ही झटके में थर्मोमीटर के पारे की तरह आधा उतर गया। वे थोड़ा-सा झुककर बोले, थैंक्यू सर और बाहर आ गए। उन्होंने जनरल मैनेजर की मेज पर मार्सल लैडयू का कार्ड रखा देख लिया था। उनके अंदर गोरों के प्रति झुँझलाहट बढ़ गई थी"।[51]..

लेखक ने अपने उपन्यास के माध्यम से गाँधीजी की जीवन-कथा बताते हुए तमाम सारे विदेशी शब्दों का प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए एक ओर जहाँ बैरिस्टर शब्द अंग्रेजी का है वहीं दूसरी ओर जहाँ तक ढकेलना शब्द की बात है यह शब्द देशज शब्द है। इस उपन्यास में अरबी, फ़ारसी, अंग्रेज़ी आदि के शब्दों का बहुत ही सुंदर उदाहरण देखने को मिलता है। उदाहरण के लिए हाजी जोसब ने गाँधीजी का परिचय देते हुए जिन शब्दों का प्रयोग किया उनमें अरबी-फ़ारसी आदि शब्द प्रचुर मात्रा में हैं। उन्होंने कहा कि "बिरादरान, तैयब सेठ ने आप सबको इसलिए यहाँ आने की जहमत दी है कि आपका तारूफ एक ऐसी शख़्सियत से कराया जाए जिसके दिल में अपने हिंदुस्थानी भाइयों के लिए महब्बत है। .... मिस्टर गाँधी पोरबंदर के एक आला खानदान से आते हैं। उनके वालिद और चाचा पोरबंदर के दीवान थे।[52].. गद्यांश में प्रयुक्त वालिद शब्द उर्दू भाषा का

है। उर्दू में वालिद पिता को कहते हैं। बैठक में गाँधीजी का परिचय देते हुए इतने अरबी-फ़ारसी के शब्दों का प्रयोग क्यों किया गया है ? इसका मुख्य कारण है बैठक में उपस्थित लोगों से गंधींजी का परिचय करवाने वाला व्यक्ति मुसलमान था। स्वभाविक है कि उपन्यास का पात्र जिस समाज से जुड़ा हुआ होगा उसकी भाषा बोली भी उसी समाज में प्रचलित भाषा-बोली के जैसी ही होगी। गाँधीजी के जीवन पर आधारित इस उपन्यास में लेखक गिरिराज किशोर ने वर्णनात्मक शैली का भी प्रयोग किया है। उदाहरण के लिए "क्रूगर का माल प्रिटोरिया में ही था। महल कम कोठी ज़्यादा। उसमें महलों वाली तड़क-भड़क बिलकुल नहीं थी।[53].. इस प्रकार लेखक गिरिराज किशोर ने वर्णात्मक शैली के माध्यम से राष्ट्रपति क्रुजर के आवास स्थल का वर्णन किया है। देश के राष्ट्रपति होने के नाते वे एक अत्यंत ही विशाल भवन में निवास करते थे। साथ ही साथ तत्कालीन परिस्थिति का भी वर्णन किया गया है कि किस प्रकार की भयंकर परिस्थितियों का अतिक्रमण करते हुए भारत के लोग ट्रांसवाल के क्षेत्र में निवास करते थे।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 https://www.youtube.com/watch ?v=OmulNcwfEtw&t=881s Aaj Savere - An interview with Narendra Kohli

2 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 24

3 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 18

4 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 43

5 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 48

6 अमृतलाल नागर, मानस का हंस, पृष्ठ संख्या 107

7 अमृतलाल नागर, खंजन नयन, पृष्ठ संख्या 11

[8] अमृतलाल नागर, खंजन नयन, पृष्ठ संख्या 19

[9] अमृतलाल नागर, खंजन नयन, पृष्ठ संख्या 39

[10] अमृतलाल नागर, खंजन नयन, पृष्ठ संख्या 98

[11] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 7

[12] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 8

[13] रांगेय राघव, रत्ना की बात, पृष्ठ संख्या 15

[14] रांगेय राघव, लोई का ताना, पृष्ठ संख्या 9

[15] रांगेय राघव, लोई का ताना, पृष्ठ संख्या 13

[16] रांगेय राघव, लोई का ताना, पृष्ठ संख्या 5

[17] रांगेय राघव, लोई का ताना, पृष्ठ संख्या 21

[18] रांगेय राघव, लोई का ताना, पृष्ठ संख्या 62

[19] रांगेय राघव, लोई का ताना, पृष्ठ संख्या 116

[20] रांगेय राघव, लोई का ताना, पृष्ठ संख्या 9

[21] रांगेय राघव, लोई का ताना, पृष्ठ संख्या 9

[22] रांगेय राघव, लोई का ताना, पृष्ठ संख्या 10, 12, 16

[23] रांगेय राघव, लोई का ताना, पृष्ठ संख्या 17

[24] रांगेय राघव, लोई का ताना, पृष्ठ संख्या 20

[25] रांगेय राघव, यशोधरा जीत गई, पृष्ठ संख्या 7

[26] रांगेय राघव, यशोधरा जीत गई, पृष्ठ संख्या 8

[27] रांगेय राघव, यशोधरा जीत गई, पृष्ठ संख्या 40

[28] रांगेय राघव, यशोधरा जीत गई, पृष्ठ संख्या 47

[29] रांगेय राघव, यशोधरा जीत गई, पृष्ठ संख्या 102

[30] रांगेय राघव, मेरी भव बाधा हरो, पृष्ठ संख्या 7

[31] रांगेय राघव, मेरी भव बाधा हरो, पृष्ठ संख्या 9

[32] रांगेय राघव, मेरी भव बाधा हरो, पृष्ठ संख्या 14

[33] रांगेय राघव, मेरी भव बाधा हरो, पृष्ठ संख्या 14

[34] रांगेय राघव, मेरी भव बाधा हरो, पृष्ठ संख्या 30

[35] रांगेय राघव, मेरी भव बाधा हरो, पृष्ठ संख्या 117

[36] रांगेय राघव, मेरी भव बाधा हरो, पृष्ठ संख्या 9

[37] रांगेय राघव, लखिमा की आँखें, पृष्ठ संख्या 16, 17

[38] डॉ कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सव लीला, पृष्ठ संख्या 27, 28

[39] डॉ कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सव लीला, पृष्ठ संख्या 23

[40] डॉ कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सव लीला, पृष्ठ संख्या 26

[41] डॉ कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सव लीला, पृष्ठ संख्या 34

[42] डॉ कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सव लीला, पृष्ठ संख्या 37

[43] डॉ कृष्णबिहारी मिश्र, कल्पतरु की उत्सव लीला, पृष्ठ संख्या 71

[44] गिरिराज किशोर, पहला गिरमिटिया, पृष्ठ संख्या 76

[45] गिरिराज किशोर, पहला गिरमिटिया, पृष्ठ संख्या 76

[46] गिरिराज किशोर, पहला गिरमिटिया, पृष्ठ संख्या 79, 80

[47] गिरिराज किशोर, पहला गिरमिटिया, पृष्ठ संख्या 93

[48] गिरिराज किशोर, पहला गिरमिटिया, पृष्ठ संख्या 101

[49] गिरिराज किशोर, पहला गिरमिटिया, पृष्ठ संख्या 111

[50] गिरिराज किशोर, पहला गिरमिटिया, पृष्ठ संख्या 113

[51] गिरिराज किशोर, पहला गिरमिटिया, पृष्ठ संख्या 109, 110

[52] गिरिराज किशोर, पहला गिरमिटिया, पृष्ठ संख्या 159

[53] गिरिराज किशोर, पहला गिरमिटिया, पृष्ठ संख्या 175

ii. 'तोड़ो कारा तोड़ो' में भाव और शिल्प

इस संसार की कोई भी भाषा चाहे बंगला हो, संस्कृत हो, हिंदी हो, मलयालम हो, तमिल हो आदि में चाहे किसी भी विधा में रचित कोई भी साहित्य हो भाव पक्ष और शिल्प पक्ष दोनों ही विद्यमान रहते हैं। ठीक इसी प्रकार उपन्यास विधा में रचित साहित्य का भी भाव-पक्ष और शिल्प पक्ष होता है। "भाव पक्ष" से अभिप्राय किसी भी विधा में रचित रचना के मूल भाव से है अर्थात् रचनाकार अपनी रचना के माध्यम से क्या मूलभूत संदेश देना चाहता है। किसी भी रचना के "शिल्प पक्ष" का अभिप्राय है उस रचना में किस प्रकार की भाषा-शैली का प्रयोग किया गया है। उसमें अन्य भाषाओं के शब्दों का प्रयोग किया गया है या नहीं। उस रचना में अलंकारों का प्रयोग किया गया है या नहीं। भाषा में सहजता है या दुरूहता है। उपन्यासों, कहानियों, नाटकों आदि के पात्रों को किस रूप में रचनाकारों के द्वारा दर्शाया गया है। उदाहरण के लिए महाभारत में शिखंडी का चित्रण एक किन्नर के रूप में है। जबकि लेखक नरेंद्र कोहली ने अपने 'शिखंडी' नामक उपन्यास में शिखंडी को एक स्त्री के रूप में दर्शाया है। मैंने साक्षात्कार लेने के दौरान लेखक नरेंद्र कोहली से यह प्रश्न किया था कि आपने शिखंडी को एक स्त्री के रूप में क्यों दर्शाया है ? जबकि महाभारत में उसे एक किन्नर के रूप में दर्शाया गया है। लेकिन आपने उपन्यास में उसे एक स्त्री के रूप में दर्शाया है। इसकी वजह क्या थी ? मेरे प्रश्न के उत्तर में उनका कहना था कि "आपने यह कैसे मान लिया कि वह किन्नर है। मैंने तो उसे एक स्त्री के रूप में पाया। मुझे तो कही किन्नर दिखाई नहीं दिया"।[1]..

इस उपअध्याय में लेखक नरेंद्र कोहली विरचित तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास में जो मूल भाव है अर्थात् लेखक ने अपने इन छः खण्डों में रचित उपन्यास के माध्यम से पाठकों को क्या संदेश देने का प्रयास किया है उसके विषय में बात करने का प्रयास किया गया है। उपन्यास में प्रयुक्त शिल्प सौंदर्य पर भी प्रकाश डाला गया है। तोड़ो कारा तोड़ो नामक उपन्यास स्वामी विवेकानंद के जीवन को आधार बनाकर लिखा गया है। इस उपन्यास के माध्यम से मनुष्य को स्वतंत्र रहने की बात कही गई है। व्यक्ति को किसी भी प्रकार के बंधन में नहीं बंधना चाहिए। उदाहरण के लिए तोड़ो कारा तोड़ो नामक उपन्यास के प्रथम खंड

में जिसका शीर्षक 'निर्माण' है स्वामी विवेकानंद के व्यक्तित्व के विविध आयामों पर प्रकाश डाला गया है। उसमें स्वामीजी अपने बचपन से ही लोभ, प्रेम, भय आदि के बंधन में बंधना नहीं चाहते हैं बल्कि इस प्रकार के बंधन को या कारागार को तोड़ना चाहते हैं। भुवनेश्वरी के मन में यह विचार आया कि प्यार की बात जताकर उसे रोका जा सकता है। भुवनेश्वरी ने कहा "बिलेह ! दे दे छुरी। यह बच्चों के खेलने की चीज नहीं है"।[2]..

माता के प्यार-भरी बातों का कोई प्रभाव बालक नरेंद्र पर नहीं पड़ा। यह देखकर माता ने अपने पुत्र को भयभीत करने का प्रयास किया। माँ ने कहा कि पिता पिटाई करेंगे। लेकिन छोटे नरेंद्र पर इसका भी कोई प्रभाव नहीं पड़ा। बालक नरेंद्र का कहना था कि पिता उसे नहीं पिटेंगे बल्कि उन नौकरानियों को ही पिटेंगे जो उन्हें दौड़कर पकड़ने का प्रयास कर रही हैं। लेखक ने स्वामी विवेकानंद की इस विचारधारा का वर्णन इन शब्दों में किया है "नरेंद्र खिलखिलाकर हँस पड़ा नहीं पिटेंगे। बाबा मुझे नहीं पिटते। ..., छुरी को फैंककर मारने की मुद्रा में खड़ा हो गया, इन्हें पीटेंगे"।[3].. अर्थात् बालक नरेंद्र को बचपन से ही आतंकित करना सम्भव नहीं था। भय एक कारा है।

स्वामीजी की माता ने अपने बालक की उदंडतापन को रोकने के लिए लोभ और प्रेम के मार्ग का भी सहारा लिया किंतु बालक नरेंद्र ने अपनी माँ द्वारा निर्मित लोभ और प्रेम रूपी कारागार को भी तोड़ दिया। बालक नरेंद्र को बचपन में ही यह आभास हो चुका था कि यह भी एक प्रकार का बंधन है। माता भुवनेश्वरी देवी ने जब लोभ और प्रेम का सहारा लेते हुए बालक नरेंद्र से कहा कि "अच्छा नहीं पीटेंगे। ला छुरी तो दे दे मैं तुझे ढेर सारा प्यार करूँगी। छोटी किरण को गोद में नहीं लूँगी। तुझे लूँगी"। माता भुवनेश्वरी देवी ने बालक विवेकानंद को लोभ के सहारे के माध्यम से भी पकड़ने का प्रयास किया। माता ने कहा कि "मैं तुझे खिलौना ले दूँगी। एकदम बढ़िया खिलौना"।[4].. अपनी माता की बातों को सुनकर नरेंद्र ने माँ से जो कहा उससे ही उनके मन में लोभ, प्रेम आदि काराओं को तोड़ने की प्रवृत्ति दिखाई देती है। उनका मन किसी भी प्रकार के बंधन को चाहे लोभ हो या प्रेम रूपी कारा हो उसमें आबद्ध नहीं होना चाहता था। उनका मन इसे तोड़ना चाहता

था। स्वामीजी ने अपनी माता से जो कहा था इसे लेखक नरेंद्र कोहलीजी ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "किंतु नरेंद्र पर इस युक्ति का कोई प्रभाव नहीं पड़ा। वह वैसे ही भागता-भागता बोला, नहीं चाहिए प्यार ! तुम्हारा प्यार मुझे पकड़ने का बहाना है। नरेंद्र के पाँव कुछ सोचकर धीमे हुए, किंतु अगले ही क्षण वह उसी गति से भागने लगा, नहीं चाहिए खिलौना"।[5].. अर्थात् यह कहा जा सकता है कि किसी को भी बिना सोचे-समझे किसी के द्वारा दिए गए भोजन के लालच में नहीं फँसना चाहिए। यह भी मानव के लिए एक कारागार है। तोड़ो कारा तोड़ो नामक उपन्यास में वर्णित मूल भाव को कई रूपों में दर्शाया गया है। उदाहरण के लिए विदेशी भाषा का कारागार, भय का कारागार, प्रेम का कारागार, लोभ का कारागार आदि। इस उपन्यास में यह दिखाया गया है कि स्वामीजी किस प्रकार इन समस्त कारागारों को तोड़ते हैं। किसी भी उपन्यास में शिल्प की भी भूमिका होती है। हिंदू चिंतन के अनुसार मानव जीवन की बुनियाद आध्यात्मिकता पर टिकी हुई है। ईश्वर के सानिध्य की प्राप्ति ही मानव जीवन का मूल लक्ष्य है इसी बात को नाट्य-शैली या शिल्प के माध्यम से दिखाया गया है। सुनिति अपने आत्मज ध्रुव से कहती है कि "बेटा तु उन भक्तवत्सल भगवान का आश्रय ले। जन्म और मृत्यु की चक्र से छूटने की इच्छा करने वाले मुमक्षु लोग निरंतर उन्हीं के चरण-कमलों के मार्ग की खोज करते हैं"।[6]..

लेखक नरेंद्र कोहली ने अपने तोड़ो कारा तोड़ो नामक उपन्यास में कारागार को कई रूपों में दर्शाया गया है। उदाहरण के लिए नारी का पुरुष के प्रति आकर्षण भी एक प्रकार का कारागार ही है। लेखक नरेंद्र कोहली ने अपने उपन्यास के पात्र कुसुमलता के माध्यम से इस कारागार को दर्शाया है। अगर मानव में निश्छल श्रद्धा होती है तो मन में निहित अहंकार रूपी कारागार बड़ी ही सहजता से तोड़ा जा सकता है। "ठाकुर के प्रति उसके मन में जमी श्रद्धा ने अहंकार को जैसे बहलाकर सुला दिया था। यही कारण था उसने खड़े-खड़े हाथ जोड़कर प्रणाम नहीं किया, जैसे कि वह आज तक करता आया था, वरन उसने पहली बार भूमिष्ट होकर प्रणाम किया"।[7]... यहाँ पर लेखक नरेंद्र कोहली यह बता रहे हैं कि अगर मानव के मन में साधु-संतों के प्रति श्रद्धा की भावना जागृत होती है तो व्यक्ति के मन में समाहित अहंकार रूपी कारागार टूट जाता है। ठाकुर कहते हैं कि "काँटों

का जंगल है तो क्या हुआ जूते पहनकर जाओ"।[8].. शिल्प के दृष्टिकोण से देखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि संसार को जंगल का रूपक दिया गया है। और काँटा यहाँ विपत्ति का प्रतीक है। ठीक इसी प्रकार जूता यहाँ ईश्वर के नाम का अस्त्र है जिनसे उन काँटों का विनाश किया जा सकता है।

इस खंड में साधना की उच्च स्थिती के विषय में बताया गया है। ठाकुर श्री रामकृष्ण कहते हैं कि "सात मंजिला मकान है। किसी की पहुँच बाहरी फाटक तक होती है, किसी की भीतरी फाटक तक। जो राजा का लड़का है उसका तो वह अपना ही मकान है। वह सातों मंजिलों पर घूम-फिर सकता है"।[9].. अर्थात् मानव का शरीर ही ईश्वर का धाम है। हिंदू आध्यात्मिक चिंतन के अनुसार मानव के शरीर में सात चक्रों का निवास है। सभी साधक सभी चक्रों का विकास नहीं कर पाते हैं। इस गद्यांश में मकान इस देह रूपी घर को ही कहा गया है। यहाँ राजा का लड़का उस परम भाग्यशाली साधक को कहा गया है जो साधना के उच्च सोपान पर पहुँच गया तथा जिसके देह रूपी इस मंदिर के सभी चक्र जागरित हो चुके हों।

"परिव्राजक" खंड में लेखक ने स्वामीजी के एक परिव्राजक के रूप में भारत भ्रमण की कथा बताई है। इसमें यह भी बताने का प्रयास किया गया है कि एक माँ के लिए उसका पुत्र बहुत ही महत्वपूर्ण होता है। भुवनेश्वरी देवी कहती हैं कि "जब किसी से सम्बंध रखना ही है तो उन्हीं से क्यों न रखा जाए, जिसने भगवान से हमारा सम्बंध बनाया है ? एक माँ आपको चाहिए ही तो उसी माँ को माँ क्यों न माना जाए जिसने आपको जन्म दिया है। नैसर्गिक सम्बंध छोड़कर एक कृत्रिम सम्बंध बनाने की क्या आवश्यकता है ? अपनी माँ को तड़पने के लिए छोड़ दिया जाए और किसी दूसरी स्त्री को माँ मानकर उनकी सेवा की जाए ...."[10].. अर्थात् लेखक नरेंद्र कोहली ने स्वामी विवेकानंद की माता को एक सामान्य व्यक्ति के रूप में दर्शाया है। वे इस बात को समझ ही नहीं पा रही थीं कि कोई संतान भले ही सन्यासी हो किंतु जिस माँ ने उसे जन्म दिया है उससे उसका सम्बंध कैसे समाप्त हो सकता है। सामान्य दृष्टि से देखा जाए तो यह अत्यंत दुखदायी बात ही है कि पिता के निधन के

बाद जिस बड़े पुत्र को घर सम्भालना चाहिए था। वह अपनी माँ को छोड़कर सन्यासी हो गया हो। एक सामान्य माता के समान अपने पुत्र मोह के दायरे से विवेकानंद की माता निकल नहीं पा रही हैं।

स्वामीजी ने अखंडानंद (उनके गुरु भ्राता) भाषा रूपी कारागार से मुक्त करने के लिए जो कहा उसे लेखक ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "स्वामी का दृष्टिकोण सर्वथा भिन्न था। उन्होंने सहज भाव से कहा बात विदेशी भाषा से घृणा की नहीं है बात अपनी भाषा से प्रेम की है। आप किसी भी कारण से दूसरी भाषा अंगीकार करते हैं तो अपनी भाषा परित्याग करते हैं। इसे मत भूलो और अपनी भाषा का त्याग राष्ट्र द्रोह है"।[11].. तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास के मूल भाव के विषय में अगर बात की जाए तो यह कहा जा सकता है कि उसके अर्थ में ही उपन्यास का मूलभाव छुपा हुआ है। तोड़ो कारा तोड़ो रवींद्रनाथ के गीत की एक पंक्ति का अनुवाद है। लेखक से जब मैंने इस विषय में प्रश्न किया कि रवींद्रनाथ इस पंक्ति का उनके यहाँ जो अर्थ है उसमें और आपके यहाँ जो अर्थ है दोनों में समानता है या भेद है ? तब उन्होंने मुझसे कहा था कि "दोनों में भेद है। यहाँ तो वो पंक्ति हमारे काम आ गई और वो विवेकानंद के चिंतन के संदर्भ में मैंने लिया कि विवेकानंद जो कह रहे हैं कि ये सारे आत्मा के बंधन भी तोड़ो और मुक्त हो जाओ। उनकी एक कविता है जिसमें कहा गया है कि शरीर में जो भी है वह एक श्रृंखला में बंधा हुआ जहाज है। जिस दिन यह श्रृंखला तोड़ दो उस दिन वह उन्मुक्त सागर में जाता है वैसे ही इस आत्मा के सारे बंधन तोड़ दो और मुक्त हो जाओ और घरे चलो। एक गीत भी उन्होंने गाया था वह अध्यात्म का क्षेत्र है वह मोक्ष है"।[12].. मानव जीवन में उत्पन्न माया रूपी कारागार को भी तोड़ने की बात लेखक ने अपने तोड़ो कारा उपन्यास के चौथे खंड के माध्यम से बताया है। उदाहरण के लिए स्वामीजी जब तिलक (बाल गंगाधर तिलक) के साथ बम्बई से पुणे जा रहे थे तब उनसे उन्होंने चर्चा करते हुए जो बताया उसे लेखक ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "किसान अन्न उपजा सकता तो कभी अकाल न पड़ता। स्वामी ने कहा यह मानते हैं कि ईश्वर किसान के माध्यम से अन्न उत्पन्न करता है। हमें दिखाई देता है कि किसान कर्म कर रहा है किंतु कर्म तो ईश्वर कर रहा है। ... किंतु सत्य यह है कि न तो हमें इन भौतिक आँखों से कर्ता

दिखाई देता है न उसका कर्म। इसीलिए हमें अकर्म में कर्म देखना चाहिए। परिवर्तन में उस अपरिवर्तन को देखना चाहिए। दूसरी ओर जो कर्ता और कर्म दिखाई देते हैं—वहाँ न कर्ता है न कर्म। वहाँ हमें कर्म में अकर्म और कर्ता में अकर्ता देखना चाहिए"।[13].. अर्थात् ईश्वर सर्वोपरि है। मनुष्य तो निमित्य मात्र है। वह भगवान के हाथ का यंत्र है। ईश्वर ही यंत्र के माध्यम से संचालित करते हुए उसे कर्म-मार्ग की ओर प्रेरित करता है।

उपन्यास की खंड संख्या चार में मूल भाव के विषय में लेखक यह बताना चाहते हैं कि सन्यासी को सर्वदा सत्य के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए। सत्य वचन कहने में उसे कभी आतंकित नहीं होना चाहिए। "प्राणों के भय से सन्यासी सत्य बोलने से डर जाएगा।कल यदि आपका पुत्र मुझसे आपके विषय में पूछे, तो क्या मैं यह नहीं बताऊँगा कि अन्य अनेक भारतीय राजाओं के समान आप भी अधिकांशत: अंग्रेज़ों की कठपुतली हैं। आप किसी भी क्षेत्र में न तो दबाव डालकर अपनी बात मनवा सकते थे, न मनवाने का प्रयत्न करते थे। परिणामतः उससे आपकी प्रजा का अहित ही हुआ है और देश के लिए भी यह व्यवहार कल्याणकारी नहीं है"।[14].. इस प्रकार लेखक ने इस गद्यांश में वर्णित अपने पात्र स्वामी विवेकानंद के बातों के माध्यम से यह बताने का प्रयास किया है कि आध्यात्मिक मार्ग पर चलने वाले साधु पुरुषों को सर्वदा सत्य के प्रति प्रतिबद्ध होना चाहिए। सत्य वचन बोलने में उसे कभी भयभीत नहीं होना चाहिए। जीवन में सत्य के मार्ग का परित्याग नहीं करना चाहिए। स्वामी विवेकानंद की यह मान्यता थी कि समस्त प्रकार के बंधन को तोड़ते हुए भारत का जो आध्यात्मिक ज्ञान है उसे विश्व व्यापक कर देना चाहिए। अपने इस पुण्य देश के ज्ञान से सम्पूर्ण विश्व को ही आलोकित करना चाहिए। साथ ही साथ उन्होंने इस देश में वैज्ञानिक सोच को विकसित करने की भी वकालत की। उदाहरण के लिए स्वामीजी मैसूर के राजा से कहते हैं कि "आज हमारे देश की आवश्यकता आधुनिक वैज्ञानिक विचार और सर्वांगीण आमूलचूल सुधार की है"।[15].. इस गद्यांश में वर्णित बातों के माध्यम से स्वामीजी यही बताना चाहते हैं कि सारे बंधनों को तोड़कर अपने आध्यात्मिक ज्ञान और विज्ञान को पश्चिमी प्रांतों में ले जाना चाहिए। भारतीयों को केवल भारत तक ही स्वयं को सीमित नहीं करना चाहिए। सारे बंधनों को तोड़कर भारतीयों को पूर्व और पश्चिम दोनों को मिला

देना चाहिए। स्वामीजी सारे बंधनों को तोड़कर भारत को आध्यात्मिकता के साथ ही साथ भौतिक रूप से समग्र भारत को समृद्धिशाली बनाना चाहते थे। स्वामीजी ने मैसूर के राजा से कहा कि "मैं चाहता हूँ कि पश्चिमी संसार हमारे युवकों को कृषि उद्योग तथा अन्य तकनीकी विज्ञानों की शिक्षा देकर हमारी भौतिक स्थिति को सुधारने में हमारी सहायता करे"।[16]..

तोड़ो कारा तोड़ो उपन्यास में पाँचवें खंड जिसका शीर्षक 'संदेश' में श्रीमती थार्फ के चिंतन का वर्णन करते हुए ओली बुल अपनी पत्नी सेरा से कहते हैं कि "मेरा संगीत ही मेरी आत्मा है और मेरी सास का मेरी संगीत से वैर है। वे दोनों एक साथ नहीं जा सकते। और मुझे उन दोनों में से किसी एक को चुनना होगा तो, मैं संगीत को ही चुनूँगा। मैं अपने सास के देहांत की कामना नहीं करता, किंतु मैं अपनी संगीत की हत्या होते हुए नहीं देख सकता। उससे पहले मेरे प्राण निकल जाएँगे"![17].. आलोच्य गद्यांश के माध्यम से यही बताया गया है कि ओली बुल एक स्वतंत्र प्रकृति के व्यक्ति हैं। जिससे उनके प्राणों का सम्बंध है उसका वे परित्याग नहीं करना चाहते। संगीत उनकी आजीविका भी है। ओली बुल की सास किस प्रकार बुल को अपने नियंत्रण में रखना चाहती है ओली बुल के इस कथन से और भी अधिक स्पष्ट हो जाएगा। ओली बुल अपनी सास के विषय में अपनी पत्नी से कहते हैं कि "किसे क्या पहनना चाहिए, कैसे केश सज्जा करनी चाहिए, क्या बोलना चाहिए, कैसे बोलना चाहिए, कैसे चलना चाहिए, कैसे उठना बैठना चाहिए।कल तो वे मुझे सिखाएँगी कि वायलेन कैसे पकड़ना चाहिए"।[18].. आर्थिक लाभ भारतीय सन्यासी का लक्ष्य नहीं है बल्कि ईश्वर लाभ ही उसका मूल लक्ष्य है। आर्थिक लाभ भौतिक समृद्धि को दर्शाता है और यह आध्यात्मिक मार्ग में आगे बढ़ने के लिए बाधा उत्पन्न करता है। हमें कभी भी आर्थिक लाभ की प्राप्ति के लिए धर्म का प्रचार नहीं करना चाहिए बल्कि परम तत्व की प्राप्ति के लिए ही धर्म प्रचार करना चाहिए।

लेखक नरेंद्र कोहली लिखते हैं कि "एक हिंदू द्वारा, ईसाई श्रोताओं के सामने महम्मद का पक्ष प्रस्तुत करना। अदभुत। यह अपने आप में इस सिद्धांत का प्रतिपादन करता है कि हमें प्रत्येक पैग़म्बर का सम्मान करना चाहिए। उनके उपदेशों को सम्मानपूर्वक सुनना और

समझना चाहिए"।[19].. अर्थात् कि मनुष्य को अपने आध्यात्मिक ज्ञान के दायरे को बढ़ाने के लिए एवं आध्यात्मिक सिद्धांतों को और भी गहराई से जानने लिए सभी पैग़म्बरों की अच्छी शिक्षाओं के माध्यम से अपने मानव जीवन को समृद्ध बनाने का प्रयास करना चाहिए। नरेंद्र कोहली ने अपने उपन्यास के पात्र स्वामी विवेकानंद के माध्यम से यह दर्शाया है कि अगर कोई विदेश की धरती पर किसी देश का उसके ही निवासी के सामने अपमान करता है तो उसका उत्तर किस प्रकार दिया जाना चाहिए, विरोध किस प्रकार किया जाना चाहिए। "स्वामी उद्विग्न दिखाई भी नहीं दिए किंतु वे अब चुप भी नहीं रह सके किस चर्च से सम्बंध है आप" ?[20]..

स्वामीजी की बात सुनकर उसने बड़े गर्व से कहा कि उसका सम्बंध प्रेसेबेटेरियन चर्च से है। स्वामीजी ने कहा कि जहाँ तक भारतवर्ष में भिक्षुकों के सम्मान की बात है राजा भी सन्यासियों के लिए अपना आसन छोड़कर सन्यासियों के चरणों में बैठता है। इतना ही नहीं वह उनके चरण भी धुलाता है। लेकिन पादरी फिर भी कहता है कि भारत के साधु संत भिखारी ही रह जाते हैं। तब स्वामीजी का कहना था कि चर्च पैसे देकर पादरियों को दूसरों को गालियाँ देने के लिए भारत भेजता है ताकि पादरी लोग हमारे देश में जाकर हमारे देश और समाज को गालियाँ दे सकें। अर्थात् पैसे लेकर गाली देने की नौकरी। एक बार बिना धन के जाकर दिखाओ। पादरी का कहना था कि आत्मा की रक्षा के लिए वे लोग इतनी दूर जाते हैं। भारतवर्ष ही भिक्षुक है। पादरी की इस प्रकार की विचार को सुनकर स्वामीजी ने जो कुछ कहा वह इस प्रकार है "भारत भिखारी है या यूरोपीय लूट के कारण निर्धन हो गया। अमेरिका के मूल निवासियों के विषय में क्या कहोगे, जिनकी हत्याएँ कर तुमने उनकी सारी सम्पत्ति लूट ली, उनकी बहू-बेटियों का सतीत्व नष्ट कर दिया। इस देश को श्मशान बना दिया तुमने। तो इस बात को जानते हैं कि आज अंग्रेज हमें छोड़कर अपने देश लौट जाएँ, तो देखो तुम कटोरा लेकर हमसे ज्ञान की भिक्षा माँगने आते हो कि नहीं"।[21].. अर्थात् ईश्वर को जानना ही धर्म है। यहाँ द्वेतवादी का परिचय देते हुए कहा गया है कि जब सत्य और असत्य को बाँटकर देखा जाता है तब उसे द्वेतवाद कहा जाता है। इस संसार में जो शुभ लक्षण हैं और अशुभ हैं दोनों बराबर हैं। शुभ में ही अशुभ का लक्षण छुपा

हुआ रहता है। स्वामीजी की मान्यता है कि व्यक्ति को शुभ और अशुभ दोनों से ही मुक्त हो जाना चाहिए। तभी व्यक्ति को आनंद की प्राप्ति होगी। श्रृंखला चाहे लोहे की हो या सोने की वह बंधन ही है। शुभ और अशुभ दोनों बंधनों को काटकर मानव मुक्त हो सकता है।

तोड़ो कारा तोड़ो के अंतिम खंड "प्रसार" में लेखक नरेंद्र कोहली ने अपने उपन्यास के पात्र स्वामी विवेकानंद के माध्यम से यह दर्शाने का प्रयास किया है कि एक सच्चा देश भक्त किस प्रकार का होता है। लेखक नरेंद्र कोहली इस विषय में लिखते हैं कि "स्वामी को लगने लगा कि उनका जी मतला रहा था। सम्भव है कि वे अपार भीड़ में घबरा गए हों। या फिर वह परिवेश उनको सात्विक नहीं लग रहा था। स्वामी कुछ देर सोचते रहे, स्वयं को रोकते भी रहे, किंतु जब असह्य हो उठा तो उन्होंने अपनी जेबें टोटलीं और एक छोटी-सी शीशी निकाली। उन्होंने कुछ रुककर उसमें से चार-पाँच बूँदें अपनी मुँह में डाल लीं। उन्हें लगा, उनका मन शांत और स्थिर हो गया है"।[22].. मनुष्य को कभी भी किसी लोभ रूपी कारा में पड़कर मिथ्या को स्वीकार नहीं करना चाहिए। धर्म की परिभाषा देते हुए स्वामी विवेकानंद कहते हैं कि "धर्म इंद्रियातीत माध्यमों से इंद्रियातीत आस्था का ज्ञान है"।[23]..

स्वामीजी कितने अधिक देशभक्त और संस्कृति भक्त थे इस बात को इस उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है। पेरिस की सैर करते हुए जब स्वामीजी गंगाजल का पान करते हैं तो इसे देखकर फ्रैंक जब स्वामीजी से पूछते है यह उन्होंने क्या पिया है ? यह क्या किसी प्रकार की कोई औषधि है ? लेखक नरेंद्र कोहली ने स्वामीजी की विचारधारा का वर्णन करते हुए लिखा है कि "औषधि ! हाँ औषधि भी कह सकते हैं। स्वामी हँसे, वस्तुतः मेरे शरीर में भारतीयता की कमी हो रही थी। मैंने भारतीयता की कुछ बूँदें पी ली हैं। अब मैं फिर से संतुलित हो जाऊँगा"।[24]..

स्वामी विवेकानंद जब लंदन में थे तब उनकी भेंट मिस हेनेरिटा मूलर से भी हुई थी। मिस मूलर ने स्वामीजी से तत्कालीन समय में इंग्लैंड के समाज में महिलाओं की दशाओं पर बात करते हुए कहा कि "आप जानते हैं स्वामीजी, उस समय वह एक निश्चित

प्राकृतिक सत्य माना जाता था कि स्त्री होने के नाते उसमें सिलाई, कढ़ाई के अतिरिक्त और किसी कार्य के लिए मानसिक योग्यता ही नहीं थी, और न ही उसका भावात्मक स्थायित्व था। उसे अर्थशास्त्र विधि, राजनीतिक अधिकार इत्यादि की आवश्यकता नहीं थी। अतः उसे अपने पति के लिए, उसके निर्देशन में घर-गृहस्थी चलाने से अधिक किसी प्रकार की शिक्षा की आवश्यकता नहीं थी। वह अपने पति के उदार निर्देशन और सुरक्षा की छत्रछाया में अपना जीवन व्यतीत करती थी"।[25].. महिलाओं की इसी दशा को सुधारने के लिए ही हेनेरिटा मूलर ने आंदोलन किया। एक सन्यासी को इस संसार के समस्त प्रकार के बंधन तोड़ देना चाहिए। बंधन चाहे सोने के हों या किसी निम्न कोटि के धातु के ही हों सभी प्रकार के बंधनों का त्याग करते हुए स्वतंत्र होना ही सन्यासी का धर्म है। अर्थात् सन्यासी को अगर परिवार में राजसुख की प्राप्ति होती है तो भी उसे त्याग देना चाहिए। ठीक इसी प्रकार अगर उसे दरिद्र सुख की प्राप्ति हो तो भी उसका सर्वदा त्याग कर देना चाहिए। सन्यासी का यह कर्तव्य है कि उसे सद-असद आदि समस्त प्रकार की विचारधाराओं से ऊपर उठना चाहिए। स्वामीजी सभी के लिए एक समान आधार भूमि का निर्माण करना चाहते थे। स्वामीजी मान्यता यह थी कि दर्शन के माध्यम से व्यक्ति को शक्तिशाली बनाना चाहिए। मनुष्य के भीतर निहित दिव्य भाव को जगाना होगा।

किसी भी देश को अगर विकसित करना है तो स्त्री और पुरुष दोनों को ही शिक्षित होना ज़रूरी है। सन 1870 में इंग्लैंड में स्त्री-शिक्षा की शुरुआत हो चुकी थी। उस समय सम्पूर्ण इंग्लैंड में पाठकों का एक नया वर्ग तैयार हो चुका था। उस समय स्त्री-शिक्षा को लेकर भी श्रीमती मेरी एलिज़ा हाविस ने लिखना शुरू किया। उन्होंने बच्चों को लेकर भी पुस्तक लिखना शुरू किया था।श्री हाविस भी एक उदार विचार सम्पन्न पादरी थे। उन्हीं दम्पति ने स्वामीजी को व्याख्यान देने के लिए अपने यहाँ बुलाया। व्याख्यान के बाद कुछ लोगों में यह अवधारणा स्पष्ट हो गई कि स्वामी विवेकानंद धन और यश के लोभी नहीं है। 10/11/1896 को स्वामी मॉनक्योर कानवेस एथिकल सोसाइटी में व्याख्यान देने गए थे। वे लेडी इसाबेल मार्गेसन के घर गए थे जो वेस्ट एंड में स्थित था। वहाँ उन्होंने हिंदुओं के बहुदेववाद की व्याख्या की। वहीं उनका परिचय माग्रेट नोबल से हुई जो कालांतर में

भगिनी निवेदिता के नाम से विख्यात हुईं। उन्होंने हिंदूधर्म की विचारधाराओं से प्रभावित होकर हिंदूधर्म ग्रहण किया था। वहाँ व्याख्यान देते हुए स्वामीजी ने यह बताया कि गोपियों का कृष्ण के प्रति प्रेम भक्ति के अतिरिक्त और कुछ भी नहीं है। माग्रेट के एक प्रश्न के उत्तर में स्वामीजी ने बताया कि गोपियों का कृष्ण के प्रति जो प्रेम है वह इन्द्रिय के सुख अथवा इंद्रियों की त्रास को शांत करने के लिए नहीं है। बल्कि यह इंद्रियातीत प्रेम है। ईश्वर सेवा के दृष्टिकोण से अगर समाज-सेवा की बात की जाए तो उसमें इस विश्व ब्रह्मांड के जितने प्राणी हैं चाहे वे मानव और मानवेतर प्राणी हों सब आ जाते हैं क्योंकि यह सम्पूर्ण संसार ईश्वर के द्वारा निर्मित हैं।

अभयानंद स्वामीजी की एक शिष्या थी। जिसके मन को एक प्रकार की मानवीय दुर्बलता के कारागार ने, पैसे के प्रति आकर्षण के कारागार ने घेर लिया था। उसे इसी कारागार से मुक्त करने के लिए स्वामीजी ने उसे पत्र लिखा था। स्वामीजी ने उसे पत्र के माध्यम बताया कि प्रत्येक व्यक्ति अपने ढंग से शिक्षा देने में स्वतंत्र हैं। एक सन्यासी होने के नाते व्यक्ति को सदैव अपना कार्य करते रहना चाहिए। उसे कभी यह नहीं सोचना चाहिए कि कौन उसकी सहायता कर रहा या नहीं कर रहा है। प्रभु पर निर्भर रहकर कार्य में आगे बढ़ना चाहिए। एक सन्यासी का क्या कर्तव्य है इस विषय में स्वामीजी ने अपने शिष्यों को सन्यास की दीक्षा देने से पूर्व जो कहा था उसके विषय में स्वामी गंभीरानंद ने लिखा है कि “सन्यास ग्रहण करने से पूर्व स्वामीजी ने ब्रह्मचारियों से कहा अत्यंत सोच-समझकर इस मार्ग में आगे बढ़ना। अगर मैं तुम लोगों को बाघ के समक्ष या ज़हरीले साँप के समक्ष जाने के लिए कहूँ। अगर कहूँ कि गंगा में कूँदकर मगरमछ को पकड़कर ले आओ। अगर कहूँ कि शेष जीवन बिना खाकर ही मरना होगा। तब तुम मेरी बातें मानने के लिए तैयार हो तो” ?[26].. अर्थात् सन्यासी या संयसिनियों को इस मार्ग में पदार्पण करने के बाद अपने जीवन में आने वाली किसी भी परिस्थिति से कभी भी आतंकित नहीं होना चाहिए।

किसी को भी सन्यासी या ब्रह्मचारी आदि बनाने से पहले इस मार्ग में चलने के लिए उस व्यक्ति की योग्यता को परख लेनी चाहिए। बिना परखे किसी भी व्यक्ति को पकड़कर सन्यासी या ब्रह्मचारी नहीं बना देना चाहिए। कृपानंद को एक बार सूचना प्राप्त हुई कि न्यूयार्क में अभयानंद ने दो लोगों को ब्रह्मचर्य की दीक्षा दी है। तभी उनके मन में यह विचार

आया कि ब्रह्मचर्य की दीक्षा लेने के लिए तो बहुत से लोग आएँगे और आते भी हैं किंतु उनमें से चयन तो बहुत कम लोगों का ही होता है। संस्यासियों को इतनी तीव्र गति से लोगों को ब्रह्मचर्य की दीक्षा नहीं देनी चाहिए। वे स्वयं इतनी तीव्र गति से लोगों को ब्रह्मचर्य की दीक्षा देने के इच्छुक नहीं थे। उनके अनुसार "ब्रह्मचर्य और सन्यास की दीक्षा के आकांक्षी को योग्यता की कसौटी पर कसना आवश्यक था"।[27]..

स्वामीजी जब न्यूयार्क में थे तब उनका एक पत्रकार ने साक्षात्कार लिया। उस साक्षात्कार में स्वामीजी ने एक बहुत ही बात बताई जो इस प्रकार है "कोई भी धर्म उतना ही उपयोगी है, जितना कि मेरा अपना धर्म। आप ईसाई हैं या मुसलमान, बैपिस्ट हैं या ब्राह्मण, अज्ञेयवादी हैं या कैथोलिक, उससे मुझको कोई अंतर नहीं पड़ता। मैं तो केवल एक ही बात पूछता हूँ कि क्या आप अपने धर्म के प्रकाश में धर्म संगत व्यवहार करते हैं"।[28].. अर्थात् सभी धर्मों की उपयोगीता बराबर है। किसी का महत्व कम या अधिक होने की बात नहीं है। जो साधु-सन्यासी होते हैं तथा जिन्होंने धर्म के वास्तविक मर्म को समझा है उनके लिए साम्प्रदायिकता का कोई महत्व नहीं होता है। वे केवल यह देखते हैं कि जो व्यक्ति जिस धार्मिक पंथ का है क्या वह उस धार्मिक मार्ग के सर्वजन कल्याणकारी मूलभूत धार्मिक सिद्धांतों को मानकर चल रहा है या नहीं ?

स्वामी विवेकानंद जब अमेरिका के न्यूयार्क में लंदन से लौटने के बाद अद्वेत वेदांत के विषय में व्याख्यान देते थे तब उनके भाषणों को लिपिबद्ध करने हेतु एक आशुलिपिक की आवश्यकता थी। एक ऐसे व्यक्ति की जिसे स्वामीजी की भाषा को समझने में कोई भी कठिनाई न हो। हालाँकि इस कार्य को कृपानंद ने शुरू में सम्भाला था किंतु वे भी इस कार्य को सम्पन्न करने में समर्थ नहीं थे क्योंकि स्वामी बड़ी ही तीव्र गति से अपना व्याख्यान दिया करते थे। इतनी तीव्र गति में कि स्वामी की बातों को लिपिबद्ध करना कृपानंद के लिए बहुत ही कठिन था। अतः एक अन्य आशुलिपिक के लिए विज्ञापन दिया गया और इस प्रकार एक अंग्रेज़ नवयुवक जॉन जोसिया गुडविन को इस कार्य के लिए चुना गया वह इस कार्य में अत्यंत दक्ष था। लेखक नरेंद्र कोहली के अनुसार "उनका जो स्टेनो था गुडविन अगर वो न मिला होता तो वो सारे भाषण जो अमेरिका में दिए गए वो हमें न मिला होता

जो अंग्रेज़ी भी समझता हो, उनकी अंग्रेज़ी भी समझता हो और अद्वेत की सारी शब्दावली भी समझता हो"।[29].. लेखक नरेंद्र कोहली ने गुडविन के विषय में लिखा है कि "जितनी देर में स्वामी बोलते थे वह उसे लिपिबद्ध कर लेता था। अदभुत प्रवाह था उसके लेखन में"।[30].. जो वास्तविक साधु-सन्यासी होते हैं वे एक ही दर्शन से सज्जन पुरुष को समझ जाते हैं। किसी व्यक्ति की वास्तविकता क्या है इस बात का बोध उन्हें हो जाता है। स्वामीजी देखते ही गुडविन को पहचान जाते हैं। वे कहते हैं कि "तुम लोभ नहीं करते, क्योंकि मानते हो धन किसी का नहीं है। जहाँ तक मैं देख रहा हूँ, तुम पिछले जन्म में योग-भ्रष्ट हो चुके थे। भ्रष्ट योगी हो तुम। तो फिर इस संसार के भोग-विलास में तुम्हारा मन कैसे रमेगा ? तुम अपनी उसी स्थिति में लौट जाना चाहते हो"।[31].. इस गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि जो व्यक्ति साधु प्रवृत्ति को लेकर जन्मा है चाहे वह किसी भी समाज और संस्कृति से जुड़ा हुआ क्यों न हो संसाररिक मोह-माया लोभ आदि उसे अपनी ओर आकर्षित नहीं कर पाते हैं। हिंदू चिंतन के अनुसार यह संसार माया रूपी आवरण से ढका हुआ है। इस आवरण को तोड़ देने के बाद ही मनुष्य को वास्तविकता का आभास होता है। स्वामीजी ने न्यूयार्क में फ्रैंक और बेस्सी को इस तथ्य को समझाते हुए कहा कि "शायद तुमने कही ऐसा चित्र देखा हो कि एक स्त्री मूर्ति एक पुरुष मूर्ति पर खड़ी है। इसका अर्थ है कि माया के आवरण को हटाए बिना ज्ञान-लाभ नहीं कर सकते। ब्रह्म निर्लिंग है, वह अज्ञात और अज्ञेय है। वह स्वयं को माया के आवरण से आवृत्त कर जगजननी का रूप धारण करता है और सृष्टि प्रपंच का विस्तार करता है। धराशायी पुरुष शिव अथवा माया से आवृत्त होने के कारण शव हो गया है"।[32].. अर्थात् व्यक्ति मोह-माया के बंधन में पड़कर ब्रह्म को भूलता चला जा रहा है। ब्रह्म ने इस माया रूपी संसार का निर्माण किया है यह भगवान के द्वारा भक्तों की परीक्षा के लिए है। माया के कारण ही वह अपने वास्तविक स्वरूप को भूलकर निष्क्रिय हो गया है। इस माया के आवरण को उपन्यास के शीर्षक के दृष्टिकोण से कहा जाए तो माया रूपी इस कारागार के टूट जाने पर ही व्यक्ति उसके वास्तविक स्वरूप का दर्शन कर पाता है।

ज्ञानयोग का अर्थ होता है ज्ञान के माध्यम से अपने भीतर में निहित दिव्यता की पहचान करना। ठीक इसी प्रकार भक्तियोग, कर्मयोग का अर्थ होता है भक्ति और कर्म के माध्यम से अपने भीतर में निहित दिव्यता की पहचान करना। राजयोग में साधक अपने मस्तिष्क को नियंत्रित करते हुए अपने दिव्य भाव की पहचान करता है। इन सभी का मूल लक्ष्य मानव के भीतर में निहित सुप्त दिव्य भाव को जागृत करना है। निष्ठापूर्वक किसी भी मार्ग में विचरण करने से मनुष्य की दिव्यता जागृत हो सकती है। वैदिक सिद्धांतों के माध्यम से स्वामीजी ने पश्चिम में स्त्री और पुरुषों के लिए एक नवीन मार्ग का निर्माण किया था। उन्होंने भारत के आध्यात्मिक ज्ञान को पश्चिम के वैज्ञानिक आस्था सम्पन्न संसार से मिलाना चाहते थे। इस संसार में यदि व्यक्ति को अमर होना है तो त्याग आवश्यक है। स्वामी विवेकानंद के अनुसार "वेद भगवान ने कहा है, न तो व्यक्ति धन से अमर होता है, न संतान से। अमरता प्राप्त करने के लिए सब कुछ भूसे के समान त्याग देना होता है"।[33].. आलोच्य गद्यांश में वर्णित बातों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि संसार के इस नश्वर आकर्षण का त्याग मनुष्य को सुखी बनाता है। भले ही समाज के दुष्ट जन साधु-सन्यासियों को नीचा दिखाने का प्रयास करते हैं, उन्हें अपमानित करने का प्रयास करते हैं तो उनकी रक्षा के लिए ईश्वर किसी न किसी को अवश्य ही भेज देते हैं। उदाहरण के लिए डिट्रायट के समाचार पत्र में स्वामीजी के विषय में इस प्रकार के नकरात्मक समाचार प्रकाशित होने के उपरांत डिट्रायट के ही एक स्थानीय निवासी जिनका नाम एडवर्ड एस ग्रेक था वे कृपानंद से मिलने आए थे। वे भारतवर्ष का भ्रमण कर लौट आए थे और वहाँ उन्होंने स्वामीजी के विषय में बहुत कुछ सूना था। वे जब मद्रास के अड्यार में थे तब वहाँ के शिक्षित समाज ने उन्हें स्वामीजी पर एक व्याख्यान देने के लिए आमंत्रित किया था। वे जब कृपानंद से मिलने आए तो कृपानंद ने स्वामीजी के विषय में प्रकाशित होने वाले उस समाचार के बारे में बताया और कहा कि समाचारपत्र में स्वामीजी के लिए एक साक्षात्कार अवश्य दें। ग्रे साहब इस साक्षात्कार के लिए तैयार हो गए। अगले दिन उन्होंने स्वामीजी का वास्तविक परिचय सम्पादक के सामने प्रस्तुत किया। कहा जाता है कि व्यक्ति जिस प्रकार का कर्म करता है उसे उसी प्रकार के फल भोगने पड़ते हैं। पादरी थॉबर्न ने समाचार पत्र में अपने साक्षात्कार

के द्वारा स्वामीजी का अपमान किया था। परन्तु इस अपमान का उत्तर भी पादरी को अपने ही घर में पत्रकारों के द्वारा मिल गया था।

पादरी थॉबर्न ने भगवान श्री कृष्ण के प्रति चर्च में जो व्याख्यान प्रस्तुत किया है यह उनकी हीन मानसिकता और अज्ञानता का प्रतीक है। ऐसे लोग आध्यात्मिक मार्ग का पथ प्रदर्शक होते हुए भी अज्ञानता रूपी कारागार में निवास करते हैं। ऐसे लोगों की अज्ञानता रूपी कारागार को तोड़ने के लिए ही स्वामी विवेकानंद जैसे आध्यात्मिक पुरुष देश-विदेश भ्रमण करते हैं और ज्ञान का आलोक बाँटते हैं। पादरी ने श्री कृष्ण के विषय में जो कहा था वह इस प्रकार है "श्री कृष्ण की दस सहस्र रानियाँ थीं और वे शिथिल-चरित्र की थीं"।[34].. स्वामीजी के अनुसार "विचारों में भिन्नता ही विकास का मूल मंत्र है"।[35].. किसी भी देश, समाज आदि को सुचारू रूप से विकसित करने के लिए विविध दिशाओं की आवश्यकता होती है। समाज का हर व्यक्ति हर विषय में पारंगत नहीं होता। समाज के अलग-अलग लोगों की दक्षता अलग -अलग होती है। अतः सभी के ज्ञान के माध्यम से ही देश का विकास सुनियोजित ढंग से होता है।

राल्फ़ फाक्स नामक अपने एक मित्र को प्रेम तत्व को समझाते हुए स्वामीजी ने जो कहा उसका सार इस प्रकार है। इस बात में कोई संदेह नहीं है कि सांसारिक प्रेम भी प्रेम है। किंतु उसमें शारीरिक आकर्षण है। प्रेम का पूर्ण विलय केवल आत्मा के स्तर में ही सम्भव है। अगर कोई किसी का सम्मान करता है तो उसे भी उसका सम्मान करना चाहिए। इस विषय में स्वामीजी मैक्स मूलर से कहते हैं कि "कोई व्यक्ति किसी भी धर्म और देश का हो, यदि वह मेरे गुरु से प्रेम करता है तो उससे मिलने के लिए जाना मेरे लिए तीर्थयात्रा है। वे जो मुझसे प्रेम करने वालों की भक्ति करते हैं, मेरे सबसे बड़े भक्त हैं"।[36].. स्वामी विवेकानंद जैसे व्यक्ति को कुछ विद्वानों ने हिंदू राष्ट्रवादी के रूप में चित्रित किया है। एक ही दायरे में बाँधने का प्रयास किया। जिनमें से प्रमुख नाम ज्योतिर्मय शर्मा का है। उन्होंने स्वामीजी को हिंदू सर्वोच्चवादी के रूप में दर्शाने का प्रयास किया है। स्वामीजी ने एक बार अपने देशवासियों से कहा था कि भारत के लोग अगले पचास सालों के लिए जितने भी देवता हैं या देवियाँ हैं उनकी पूजा छोड़कर केवल जीवंत ईश्वर की सेवा करें। विराट स्वरूप की सेवा

करें। भारतमाता की सेवा करें। स्वामीजी की इन विचारधाराओं के आधार पर ज्योतिर्मय शर्मा ने उन्हें एक हिंदू सर्वोच्चवादी के रूप में चित्रित किया। लेकिन शर्माजी शायद स्वामी विवेकानंद के द्वारा दी गई विराट की परिभाषा को समझ ही नहीं पाए। प्रख्यात विद्वान स्वामी मेधानंद इस विषय में लिखते हैं कि "Sharma is mistaken in equating virat with the Hindu masses alone".[37].. इन पंक्तियों के आधार पर यह कहा जा सकता है कि वस्तुतः शर्माजी ने उनकी सेवा दृष्टि पर कोई ध्यान नहीं दिया कि उन्होंने जिस सेवा की बात कही उसमें हर जीव समाहित है कोई भेद नहीं है। साथ ही साथ भारतमाता की सेवा का अर्थ है भारतवर्ष के लोगों की सेवा उसमें हिंदू, मुस्लिम, सीख, ईसाई आदि सभी समाहित है। शर्माजी इस बात को भूल गए कि भारत में तत्कालीन समय में केवल हिंदू ही नहीं रहते थे बल्कि दूसरे धर्मों के लोग भी रहते थे। उन्होंने जिस विराट की बात कही थी उसमें समस्त विश्व समाहित है। स्वामीजी की भारतमाता की सेवा के विषय में लेखक नरेंद्र कोहली कहते हैं कि "जिस समय वह विदेश से पहली बार लौटकर आए तब उन्होंने मद्रास में कहा था कि एक ही देवी भारतमाता की सेवा करो। भारतमाता की सेवा का अर्थ है भारत के लोगों की सेवा। भारतमाता कोई मूर्ति नहीं है कोई चित्र नहीं है"।[38]..

ज्योतिर्मय शर्मा और रामवचन आदि विद्वानों ने जैसा कि उन्हें स्वामीजी को हिंदू सर्वोच्चवादी के रूप में दर्शाने का प्रयास। किंतु वे केवल हिंदू सर्वोच्चवादी नहीं थे। इस बात को इस उदाहरण के माध्यम से समझा जा सकता है। स्वामीजी जब अमेरिका में सहस्त्रद्वीपोद्यान में जब एक वृद्ध व्यक्ति ने जब स्वामीजी से यह पूछा कि उन्होंने सुना है कि स्वामीजी उस ईश्वर की पूजा नहीं करते हैं जिसकी पूजा ईसाई समाज करता है। तो उस वृद्ध व्यक्ति को स्वामीजी ने जो उत्तर दिया उसी से यह स्पष्ट हो जाता है कि वे हिंदू सर्वोच्चवादी नहीं थे। उस वृद्ध व्यक्ति के कथन को सुनकर स्वामीजी ने जो उत्तर दिया उसे लेखक नरेंद्र कोहली ने इन शब्दों में व्यक्त किया है "मैं ईसा की भी पूजा करता हूँ। अंतर इतना है कि मैं कृष्ण की भी पूजा करता हूँ। मैं बुद्ध की भी पूजा करता हूँ। और आपसे भी कहता हूँ कि ईसा की पूजा करें किंतु कृष्ण से भी प्रेम करें"।[39].. एक अन्य उदाहरण से भी यह बात स्पष्ट हो सकती है कि वे हिंदू सर्वोच्चवादी नहीं हैं। नहीं तो वे जमालुद्दीन से ऐसा

क्यों कहते कि "मैं अपनी माँ से प्रेम करता हूँ, उसके लिए यह आवश्यक नहीं है कि मैं अन्य माताओं से घृणा या ईर्ष्या करूँ"।[40]..

स्वामीजी केवल हिंदू सर्वोच्चवादी नहीं थे इस बात को तपन रायचौधरीजी की इन विचारधाराओं के माध्यम से व्यक्त किया है "ऐसी बात नहीं हैं कि केवल देशप्रेम के आदर्श से प्रभावित होकर ही उन्होंने इस्लामधर्म से प्रेम किया था बल्कि उनके गुरु में सूफ़ीवाद और अद्वेतवाद का सामंजस्य देखा गया। लेकिन उनके निकट इस धर्म के सहज-सरल आवेदन ही सर्वाधिक था। इस्लाम के भ्रातृत्वबोध को इस्लामधर्म की सबसे बड़ी विशेषता के रूप में स्वीकार करते थे"।[41].. तोड़ो कारा उपन्यास में वर्णित इन घटनाओं एवं तपन रायचौधरी की बातों को अगर ध्यान में रखा जाए तो यह कहा जा सकता है कि वे हिंदू सर्वोच्चवादी नहीं थे। ऐसा प्रतीत होता है कि ज्योतिर्मय शर्मा ने स्वामीजी के विषय में मूल्यांकन करते हुए हुए उनके इन विचारों को महत्व नहीं दिया। स्वामीजी को केवल एक हिंदू सर्वोच्चवादी के रूप में दर्शाना एक काली दिशा है। अपने देश के लोगों के द्वारा भी स्वामी विवेकानंद को एक अंधेरी खाई में फेंकने का प्रयास किया गया है। प्रतापचंद्र मजूमदार जो ब्राह्मसमाज से जुड़े हुए थे एवं बंगाल के कायसत समाज से जुड़े हुए थे उन्होंने भी अपने मिथ्या प्रचार के द्वारा स्वामी विवेकानंद को एक झूठा प्रचारक सिद्ध करने का प्रयास किया। उसने अमेरिका में लोगों को यह बताया कि विवेकानंद न तो कोई सन्यासी है और न ही ऐसा कोई सम्प्रदाय भारत में मौजूद है जिससे वह जुड़ा हुआ है। वह एक अभिनेता है जो नाटकों में अभिनय करता है। वह अमेरिका में आकर यहाँ की सुंदरी युवतियों के साथ एश कर रहा है। वह एक शिथिल चरित्र का व्यक्ति है। इस तरह से भारत के बुद्धिजीवियों ने स्वामीजी को अमरीकियों के नज़रों में गिराने का प्रयास किया गया है। भारत में उनके द्वारा किए गए नाटकों के अभिनय को नकरात्मक तरीक़े से पेश किया गया। लेखक नरेंद्र कोहली ने स्वामीजी की बातों को इन शब्दों में व्यक्त किया है "मजूमदार की मुद्रा एक विजयता की-सी हो गई, शिकागो के धर्म-संसद में ही अध्यक्ष जान बैरोज़ को कह दिया था कि वह सन्यासी-वन्यासी कोई नहीं है। यहाँ आकर साधु बन बैठा है"।[42]..

स्वामी विवेकानंद को विदेश की धरती में अपने लोगों द्वारा ही अपमानित हुए थे ऐसी बात नहीं है बल्कि उन्हें अमरीकी पादरियों का अपमान भी झेलना पड़ा। उदाहरण के लिए थर्सबी के घर में एक पादरी के अपमान का सामना करना पड़ा। स्वामी को अपमानित करते हुए उसका कहना था कि उन्होंने तो अपने दुकान का निर्माण भली प्रकार कर लिया है। भारत भिक्षुकों का देश है। हालाँकि स्वामीजी ने उस पादरी को इस अपमान का जबाव भी दिया। ठीक इसी प्रकार इभिनिंग नियूज समाचारपत्र ने भी स्वामीजी के विषय में काफ़ी अपमानजनक समाचार प्रस्तुत किया। उस समाचारपत्र के पत्रकार ने स्वामी विवेकानंद के विषय में पादरी थबॉर्न और लैंड्सबर्ग का साक्षात्कार लिया। किंतु उस समाचारपत्र के पत्रकार ने लैंड्सबर्ग की विचारधाराओं को जोकि स्वामी के विषय में सत्य जानकारियाँ थीं लेकिन उसे काफ़ी तोड़-मरोड़ पेश किया गया एवं पादरी ने जो मिथ्या जानकारियाँ दी थीं उसे बड़े ही अच्छे ढंग से पेश किया गया। पादरी का कहना था कि स्वामी विवेकानंद ने अपना स्वामी नाम अपने ही देश मद्रास प्रांत के सन्यासी से चुराया है। इतना ही नहीं वह उस हिंदूधर्म का प्रतिनिधि है जिसका इस संसार में कोई अस्तित्व नहीं है। इस प्रकार स्वामीजी को विदेशों में अपमान का सामना करना पड़ा। स्वामी विवेकानंद भी राष्ट्रवादी थे। अपने बाल्यकाल में अपने देश की भाषा के प्रति प्रेम को राष्ट्रवाद के दृष्टिकोण से देखा जाना चाहिए। इस विषय में प्रख्यात विद्वान तपनराय चौधरी के अनुसार “राष्ट्रवाद और विदेशियों के प्रति घृणा की मानसिकता नरेन के बाल्यकाल के परिवेश की एक विशेषता है। केवल आठ वर्ष की उम्र में अंग्रेज़ी विदेशी शासकों की भाषा होने के कारण वे इसे नहीं सिखेंगे इस ज़िद को अपने मन में बाँध लिया था। किंतु कालांतर में माँ की कोशिश के कारण उन्होंने यह ज़िद छोड़ दिया। राष्ट्रीय पुनर्जागरण के लिए शारीरिक शक्ति की उपयोगीता को अपने विद्यालय जीवन में ही उन्होंने अनुभव किया था”।[43].. इस गद्यांश के आधार पर यह कहा जाता सकता है कि स्वामीजी की इस राष्ट्रवादी विचारधारा को इस दृष्टि देखा जाना चाहिए कि किसी देश की संस्कृति को उसकी राष्ट्रीय पहचान को बनाए रखने के लिए उसके नागरिकों को अपने देश की भाषा की जानकारी

होनी चाहिए। स्वामी विवेकानंद के शब्दों में "जिस समाज की भाषा से हम अपरिचित रहते हैं, उस समाज की भाषा और संस्कृति से हम अपरिचित रह जाते हैं"।[44]..

तपनराय चौधरी ने जैसा कि कहा कि शुरू में भले ही अंग्रेज़ी शिक्षा के विरोधी थे किंतु कालांतर में अपनी माँ के प्रयास के कारण उन्होंने अपनी अंग्रेज़ी भाषा न सीखने की यह जीद उन्होंने छोड़ दी थी। इस कथन का तात्पर्य यह है कि वे अंग्रेज़ी भाषा सीखने के विरोधी नहीं थे। उदाहरण हेतु वे अपने अध्यापक से कहते हैं कि "मैं यह नहीं कहता कि अंग्रेज़ी या कोई भी विदेशी भाषा सीखनी ही नहीं चाहिए"।[45]..

उनकी मान्यता थी कि किसी भी व्यक्ति को सबसे पहले अपनी भाषा में दक्ष होना चाहिए।

****

संदर्भ ग्रंथ सूची

1 लेखक नरेंद्र कोहली ने मेरे द्वारा लिया गया साक्षात्कार, दिनांक 15/11/2020

2 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 14

3 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 14

4 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 14

5 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 18

6 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 118

7 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 275

8 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 2 साधना, पृष्ठ संख्या 47

9 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 2 साधना, पृष्ठ संख्या 9

10 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 9

11 नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 33

[12] मेरे द्वारा 15/11/2021 को लेखक से लिया गया एक घंटे का साक्षात्कार

[13] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो नामक उपन्यास खंड संख्या 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या, 76

[14] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो नामक उपन्यास खंड संख्या 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या, 137

[15] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो नामक उपन्यास खंड संख्या 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या, 139

[16] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो नामक उपन्यास खंड संख्या 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या, 140

[17] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 13

[18] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 12

[19] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 48

[20] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 92

[21] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड संख्या 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 93

[22] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 15

[23] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 148

[24] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 15

[25] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 51

[26] स्वामी गंभीरानंद, युगनायक विवेकानंद तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या 6

[27] स्वामी गंभीरानंद, युगनायक विवेकानंद तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या 145

[28] स्वामी गंभीरानंद, युगनायक विवेकानंद तृतीय खंड, पृष्ठ संख्या 151

[29] Aaj Savere an interview with Narendra Kohli, Eminent Author, D.D. National https://www.youtube.com/watch?v=OmulNcwfEtw&t=1148s

[30] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 173

[31] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 170

[32] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 195

[33] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 220

[34] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 257

[35] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 275

[36] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 6 प्रसार, पृष्ठ संख्या 378

[37] Swami Medhananda, Was Swami Vivekananda a Hindu Supermacist, page 4

[38] Aaj Savere an interview with Narendra Kohli, Eminent Author, D.D. National https://www.youtube.com/watch?v=OmulNcwfEtw&t=1148s

[39] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 5 संदेश, पृष्ठ संख्या 364

[40] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 3 परिव्राजक, पृष्ठ संख्या 89

[41] तपन रायचौधरी अनुवाद गीताश्री बंदोपाध्याय, योरोप पुनः दर्शन, पृष्ठ संख्या 207

[42] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 4 निर्देश, पृष्ठ संख्या 384

[43] तपन रायचौधरी अनुवाद गीताश्री बंदोपाध्याय, योरोप पुनः दर्शन, पृष्ठ संख्या 211

[44] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 89

[45] नरेंद्र कोहली, तोड़ो कारा तोड़ो खंड 1 निर्माण, पृष्ठ संख्या 89